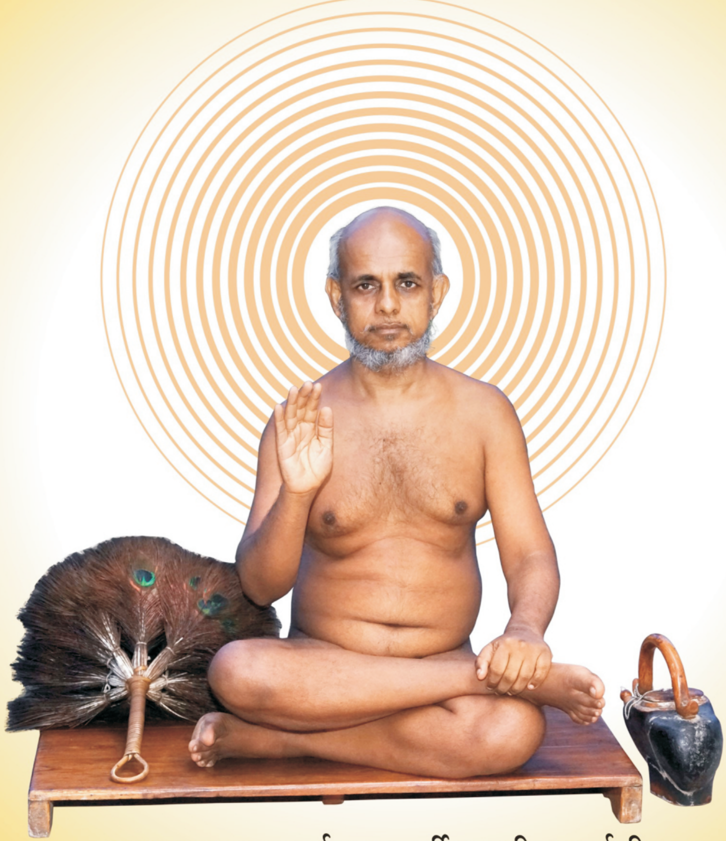

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

नमस्कार महामन्त्र

लेखक
पण्डित कैलासचन्द्र शास्त्री

प्रकाशक
भारतीय दिगम्बर जैन संघ

(परम्परानायक)

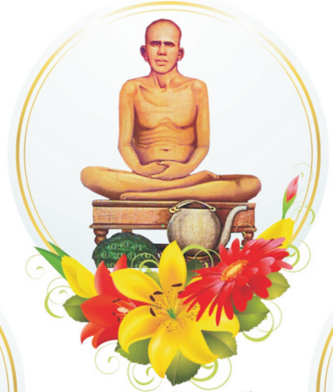

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

भा० दि० जैन संघ पुस्तकमाला का नौवाँ पुष्प

नमस्कार-महामन्त्र

लेखक
श्री पं० कैलाशचंद्र सिद्धांतशास्त्री
आचार्य
श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी

प्रकाशक
भारतीय दिगम्बर जैन संघ

मूल्य साढ़े दस आने

श्री पंच नमस्कार मन्त्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

इन पवित्र वाक्योंको जैनागममे श्री पञ्च नमस्कार महामन्त्र कहते हैं। जैनधर्मको मानने वाले जितने भी अवान्तर सम्प्रदाय हैं, सभी सम्प्रदाय इस महामन्त्रको न केवल मानते हैं किन्तु सभीकी श्रद्धा और भक्ति इस मन्त्रके प्रति समान है, सभी इसे महामन्त्र या मूल मन्त्रके रूपमें स्वीकार करते हैं और अत्यन्त आदरके साथ प्रति दिन इसका स्मरण, जप और ध्यान आदि किया करते हैं। सबसे प्रथम बच्चोंको इसी मन्त्रकी दीक्षा दी जाती है। उन्हें यही मन्त्र कण्ठस्थ कराया जाता है। ऐसे जैन स्त्री पुरुष और बच्चे विरले ही होंगे जिन्हें यह महामन्त्र कण्ठस्थ न हो। जैसे ब्राह्मण समाजमें यह कहावत प्रचलित है कि जिसे गायत्री मन्त्र याद नहीं, वह ब्राह्मण ही नहीं, वैसे ही जैनोंमें भी यह बात प्रचलित है कि जिसे नवकार (नमस्कार) मन्त्र याद नहीं वह कैसा जैन ? यह तो उसका मूलमन्त्र है और मूल मन्त्र तो प्रत्येककी जिह्वापर होना ही चाहिये।

माहात्म्य—

जैन शास्त्रोंमें इस मन्त्रका बड़ा माहात्म्य बतलाया गया है। यही वजह है जो जैनोंमें इसका इतना अधिक प्रचार और प्रसार है तथा इसके प्रति जैनोंकी इतनी अधिक श्रद्धा और भक्ति है।

अनेक शास्त्र इसकी महिमा और गुण-गानमे भरे हुए है। लौकिक और पारलौकिक कोई कार्य्य ऐसा नहीं है जो इस महामन्त्रकी आराधनाके द्वारा सफलता पूर्वक किया न जा सके अथवा इसके आराधनामे जिसमे सफलता प्राप्त न की जा सके। जैसा कि कहा है—

मन्त्र ससारसार त्रिजगदनुपम सर्वपापारिमन्त्रं,
ससारोच्छेदमन्त्र विषमविषहर कर्मनिर्मूलमन्त्रम्।
मन्त्र सिद्धिप्रदान शिवसुखजननं केवलज्ञानमन्त्र
मन्त्र श्रीजैनमन्त्र जप जप जपितं जन्मनिर्वाणमन्त्रम् ॥

अर्थात्—'यह नमस्कार मन्त्र ससारमे सारभूत है, तीनों लोकोमे इसकी तुलनाके योग्य दूसरा कोई मन्त्र नहीं है, समस्त पापोंका यह शत्रु है, ससारका उच्छेद करने वाला है, भयकरसे भयकर विषको हर लेता है, कर्मोंको जड मूलसे नष्ट कर देता है, इसीसे सिद्धि-मुक्तिका दाता है, मोक्ष सुखका और केवल ज्ञानका उत्पन्न करने वाला है। अत इस मन्त्रको बार-बार जपो, क्योंकि यह जन्म-परम्पराको समाप्त कर देता है'।

और भी कहा है—

आकृष्टि सुरसम्पदा विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता-
मुच्चाटं विपदा चतुर्गतिभुवा विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भ दुर्गमन प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं,
पायात् पञ्चनमस्क्रियाक्षरमयी साराधनादेवता ॥

अर्थात्—'यह मन्त्र देवोंकी विभूतिको आकृष्ट करता है, यानी जो इसका जप करता है उसे देवगतिकी प्राप्ति होती है, मुक्ति रूपी लक्ष्मीको अपने अधीन करता है, चारो गतियोंमें

होनेवाली विपत्तियोंका नाश कर डालता है, आत्माके पापोका तो शत्रु है, और मोहका समोहन करनेवाला है। अत वह पञ्च नमस्कारात्मक अक्षर रूप आराधना देवता हमारी रक्षा करे।'

उक्त दो श्लोकोंसे इस महामन्त्रकी अतुल शक्तिका परिचय मिल जाता है। खेद है कि ऐसे शक्तिशाली और सिद्धिदाता मन्त्रका जितना प्रचार होना चाहिये था उतना प्रचार नहीं है, तथा जिनमें प्रचार है वे लोग भी उसके विषयसे पूरी तरह परिचित नहीं हैं। अत सभी आवश्यक और उपयोगी दृष्टिसे प्रकृत मन्त्रपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जाता है जिससे मन्त्रसे परिचित सज्जन अपनी त्रुटियोंको दूर करके और अपरिचित सज्जन उसका परिचय प्राप्त करके आत्महितके साथ साथ सासारिक सुख भी प्राप्त कर सकें और व्यर्थकी ऋद्धि-सिद्धियोंके चक्करमें पड़कर अपना अनिष्ट न कर बैठें। सबसे प्रथम मन्त्र शास्त्रकी दृष्टिसे इसपर प्रकाश डाला जाता है।

मन्त्रशास्त्रकी दृष्टिसे—

जिसका पाठ करने मात्रसे कार्य सिद्ध हो उसे मन्त्र कहते हैं। और जिसको जप हवन वगैरह करके सिद्ध करना पड़ता है उसे विद्या कहते हैं। जैन ग्रन्थोंमें विद्या और मन्त्रमें यही भेद बताया है। ऐसा भी कहा जाता है कि जिसकी अधिष्ठातृ देवता स्त्री होती है वह विद्या है और जिसका अधिष्ठातृ देवता पुरुष होता है वह मन्त्र है। विद्यानुवाद नामके पूर्वमें अनेक विद्याओं और मन्त्रोंके होनेका वर्णन शास्त्रोंमें पढनेमें आता है। खेद है कि इस युगमें ये विद्याएँ लुप्त हो गई हैं और बहुतसे आधुनिक शिक्षित आज उनपर विश्वास नहीं करते। फिर भी खोजसे पता चलता है कि प्राचीन भारतमें मन्त्र तन्त्रवादियोंका बहुत जोर था और उनमें कितने ही सच्चे साधक भी थे। किन्तु उसके दुरुपयोगसे

अनेक शास्त्र इसकी महिमा और गुण गानसे भरे हुए हैं। लौकिक और परलौकिक कोई कार्य्य ऐसा नहीं है जो इस महा-मन्त्रकी आराधनाके द्वारा सफलता पूर्वक किया न जा सके अथवा इसके आराधनासे जिसमे सफलता प्राप्त न की जा सके। जैसा कि कहा है—

मन्त्र संसारसार त्रिजगदनुपम सर्वपापारिमन्त्रं,
संसारोच्छेदमन्त्रं विषमविषहरं कर्मनिर्मूलमन्त्रम्।
मन्त्रं सिद्धिप्रदानं शिवसुखजननं केवलज्ञानमन्त्रं
मन्त्रं श्रीजैनमन्त्र जप जप जपितं जन्मनिर्वाणमन्त्रम् ॥

अर्थात्—'यह नमस्कार मन्त्र ससारमें सारभूत है, तीनों लोकोंमें इसकी तुलनाके योग्य दूसरा कोई मन्त्र नहीं है, समस्त पापोंका यह शत्रु है, ससारका उच्छेद करने वाला है, भयकरसे भयकर विषको हर लेता है, कर्मोंको जड़ मूलसे नष्ट कर देता है, इसीसे सिद्धि-मुक्तिका दाता है, मोक्ष सुखका और केवल ज्ञानका उत्पन्न करने वाला है। अत इस मन्त्रको बार-बार जपो, क्योंकि यह जन्म-परम्पराको समाप्त कर देता है'।

और भी कहा है—

आकृष्टि सुरसम्पदा विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता-
मुच्चाटं विपदा चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भं दुर्गमन प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं,
पायात् पञ्चनमस्क्रियाक्षरमयी साराधनादेवता ॥

अर्थात्—'यह मन्त्र देवोंकी विभूतिको आकृष्ट करता है, यानी जो इसका जप करता है उसे देवगतिकी प्राप्ति होती है, मुक्ति रूपी लक्ष्मीको अपने अधीन करता है, चारों गतियोंमें

नेवाली विपत्तियोका नाश कर डालता है, आत्माके पापोका तो त्रु है, और मोहका समोहन करनेवाला है। अत वह पञ्च नमकारात्मक अक्षर रूप आराधना देवता हमारी रक्षा करे।'

उक्त दो श्लोकोंसे इस महामन्त्रकी अतुल शक्तिका परिचय मिल जाता है। खेद है कि ऐसे शक्तिशाली और सिद्धिदाता मन्त्रका जितना प्रचार होना चाहिये था उतना प्रचार नहीं है, तथा जिनमें प्रचार है वे लोग भी उसके विषयसे पूरी तरह परिचित नहीं हैं। अत. सभी आवश्यक और उपयोगी दृष्टिसे प्रकृत मन्त्रपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जाता है जिससे मन्त्रसे परिचित सज्जन अपनी त्रुटियोंको दूर करके और अपरिचित सज्जन उसका परिचय प्राप्त करके आत्महितके साथ साथ सासारिक सुख भा प्राप्त कर सकें और व्यर्थकी ऋद्धि-सिद्धियोंके चक्करमें पड़कर अपना अनिष्ट न कर बैठें। सबसे प्रथम मन्त्र शास्त्रकी दृष्टिसे इसपर प्रकाश डाला जाता है।

मन्त्रशास्त्रकी दृष्टिसे–

जिसका पाठ करने मात्रसे कार्य सिद्ध हो उसे मन्त्र कहते हैं। और जिसको जप हवन वगैरह करके सिद्ध करना पड़ता है उसे विद्या कहते हैं। जैन ग्रन्थोमें विद्या और मन्त्रमें यही भेद बताया है। ऐसा भी कहा जाता है कि जिसकी अधिष्ठातृ देवता स्त्री होती है वह विद्या है और जिसका अधिष्ठातृ देवता पुरुष होता है वह मन्त्र है। विद्यानुवाद नामके पूर्वमें अनेक विद्याओं और मन्त्रोंके होनेका वर्णन शास्त्रोंमें पढनेमे आता है। खेद है कि इस युगमें ये विद्याएँ लुप्त हो गई हैं और बहुतसे आधुनिक शिक्षित आज उनपर विश्वास नहीं करते। फिर भी खोजसे पता चलता है कि प्राचीन भारतमें मन्त्र तन्त्रवादियोंका बहुत जोर था और उनमें कितने ही सच्चे साधक भी थे। किन्तु उसके दुरुपयोगसे

अथवा मन्त्र तन्त्रकी ओटमें ठग विद्याका आश्रय लेनेमें यह विद्या बदनाम होनेके साथ ही साथ लुप्त हो गई और नमस्कार लोगोंकी उसपरसे आस्था उठ गयी।

जैन धर्म और मन्त्र शास्त्र—

एक समय बौद्ध सम्प्रदायमें इस विद्याका बडा प्रचार था। विद्वानोंकी खोजमें ज्ञात हुआ है कि पांचवींसे दसवीं शती तक पांच सौ वर्षोंमें लगभग अढाई हजार छोटे मोटे ग्रन्थ मन्त्र विद्यापर बौद्ध सम्प्रदायमें रचे गये थे। बौद्ध लोग मन्त्र तन्त्रके इतने अनुगामी हो गये थे कि बात बातमें उसका उपयोग करते थे और सब कुछ देवताओंपर छोडकर चैनकी बंसी बजाते थे। आज भी तिब्बतके बौद्धलामाओंका समय मन्त्र रटते रटते बीतता है। किन्तु मन्त्रपाठ करते करते मुह दुखने लगता है इसलिए उन्होंने पीतल और जस्तेकी छोटी बडी फिरकियां तैयार कर ली हैं। एक कागजके ऊपर प्रार्थनाका मन्त्र लिखकर और उसे लपेट कर वे इन फिरकियोंमें रख देते हैं। फिर उन्हें हाथमें घुमाते हैं। जितनी दफा यह फिरकिनी घूमती है उतनी बार उन मन्त्रोंका जाप हुआ माना जाता है। और उसका पुण्य भी लामाओंको बिना झंझट मिल जाता है। बडे बडे लामाओंकी फिरकियाँ भी बडी बडी होती हैं। कहीं कहीं तो पवन चक्कियोंसे प्रार्थना मन्त्रोंका काम लिया जाता है। इन पवन चक्कियों या पनचक्कियोंपर बहुतसे मन्त्र लिखे रहते हैं और पानी या वायु इन प्रार्थना मन्त्रोंको चलाकर लामाओंकी ओरसे प्रार्थनाका काम करते रहते हैं। बिना हाथ पैर हिलाये पुण्य प्राप्तिका कितना सरल उपाय खोज निकाला है?

कुछ विद्वानोंका मत है कि बौद्धोंके प्रभावके कारण ही जैनोंमें मन्त्रसाहित्य रचा गया है, किन्तु यह मत भ्रम-पूर्ण है, क्योंकि जैन साहित्यसे यह प्रगट है कि जैनाचार्य मन्त्र विद्यासे पहलेसे

ही सुपरिचित थे जैसा कि विद्यानुवाद पूर्वके उल्लेख स्पष्ट है। किन्तु यह बात सत्य है कि जिस कालमें भारतमें मन्त्र-तन्त्रवादका प्राधान्य था उस कालके प्रभावसे जैन भी अछूते नहीं रहे हैं और उन्होने भी उस ओर विशेप ध्यान देकर अपने मन्त्र साहित्यको पल्लवित और पुष्पित किया है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि मानव समाज स्वभावसे ही चमत्कारोंका भक्त होता है। उसे थोडासा भी अलौकिक चमत्कार दिखलाकर एक इन्द्रजालिया भी मोहित कर लेता है फिर मन्त्र-तन्त्र वादियोंका तो कहना ही क्या है ? अत चमत्कारप्रिय जनताको चमत्कारोंके चक्करमें पड़कर पथभ्रष्ट होनेसे बचानेके लिये या जैन मन्त्र साहित्यका प्रभाव दर्शानेके लिये जैनाचार्योंको भी उस ओर अपना उपयोग लगाना पडा हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

किन्तु यह स्पष्ट है कि जैन गुरुओंका इस विद्याके प्रति वैसा आदरका भाव कभी नहीं रहा जैसा बौद्धों या शाक्तों वगैरहमे रहा है। उन्होंने इसका अभ्यास अवश्य किया किन्तु उसका उपयोग जिनशासनको रक्षामें ही किया। लौकिक सिद्धियोंके चमत्कारमें वे कभी भी नहीं पडे। और यदि किसी साधुने इस मार्गका अवलम्बन लिया भी तो उसे दण्डका भागी होना पड़ा। साधारण साधुओंकी बात तो जाने दीजिये,श्वेताम्बराचार्य स्थूलभद्र जैसे प्रभावशाली स्थविरको विना आवश्यकताके अपनी मन्त्र शक्तिका प्रयोग करनेके कारण दण्डका भागी होना पडा था।

इस विपयमें इतना कडा प्रतिबन्ध होनेका कारण यह है कि जैन धर्मका मुख्य लक्ष्य मोक्ष है। और मोक्षका अभिलापी मुमुक्षु एक वीतरागी जिनेन्द्र देवके सिवा इष्ट अनिष्टकर सकनेकी शक्ति रखनेवाले रागी द्वेपी देवताओंकी उपासना कभी भी नहीं करता। यदि वह ऐसा करे तो फिर वह मोक्षाभिलाषी नहीं रहता।

इतना ही नहीं, योगकी प्राप्तिकी अभिलाषासे आत्म साधना करते हुये यदि अनायास उस पाठ ऋद्धि सिद्धि प्राप्त हो भी जावे तो भी वह उन आत्म उपासक साधक अपने लक्ष्यकी ओर ही दृष्टि रखता है, फलस्वरूप उनकी ओर आकृष्ट नहीं होता, क्योंकि ये लौकिक ऋद्धिसिद्धियां योगकी साधक नहीं बल्कि, उल्टी बाधक होती हैं। उदाहरणके लिये आजसे कुछ वर्ष पहले जब भारत परतन्त्र था तो विदेशी सरकार सदा इस बातके लिये सचेष्ट रहती थी कि जो भारतको स्वतन्त्र करनेके आन्दोलनमें प्रमुख भाग लेते उनको सरकारी पद और पदवियोंका प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला ले। और इस तरह उन्हें उस कार्यसे विमुख कर दे जिसके करनेका उन्होंने व्रत लिया था। फलतः अनेक अच्छे देशनेता सरकारके चंगुलमें फंस गये और उसीके गीत गाने लगे। जब महात्मा गांधीने इस क्षेत्रमें पदार्पण किया तो उन्होंने इन सरकारी हथकण्डोंसे बचनेके लिये, सरकारी पदों और पदवियोंका बायकाट करना आवश्यक समझकर उनपर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया। तब कहीं जाकर देश भक्तोंकी निष्काम साधनाके फलस्वरूप भारत स्वतन्त्र हुआ। इसी तरह जो आत्माको सांसारिक कर्म बन्धनोंसे मुक्त करनेका सदुद्देश्य लेकर साधनाके पथपर उतरता है उसका ध्यान एकमात्र अपने लक्ष्यकी ओर ही रहता है, इसीके लिये वह सतत प्रयत्नशील रहता है। अपनी इस कठोर साधनाके फलस्वरूप यदि उसे कोई ऋद्धि-सिद्धि अनायास मिल जाती भी है तो उसे वह ऐसा ही समझता है जैसा सच्चा देशभक्त सरकारी पदोंको समझता था। वह जानता है कि इनके चक्करमें पड़नेसे मैं लक्ष्य भ्रष्ट हो जाऊंगा, अतः इन झूठे प्रलोभनोंसे मुझे बचना ही चाहिये। बस वह उनकी रत्ती भर भी परवाह न करके आगे बढ़ता चला जाता है और अन्तमें उस सिद्धिको प्राप्त करता है जिसे प्राप्त करके फिर कुछ प्राप्त करनेकी अभिलाषा ही जाती

रहती है। अत जैन धर्ममे एक साधुकी तो बात ही क्या, एक सच्चे ज्ञानी श्रावककी दृष्टिमें भी लौकिक ऋद्धि-सिद्धियोंका कोई महत्त्व नहीं है और वह उनकी बिलकुल भी परवाह नहीं करता।

किन्तु सभी श्रावक इतने ज्ञानी और दृढ निश्चयी नहीं होते, उन्हें परलोकके साथ इस लोककी भी अनेक चिन्ताए सताती हैं। आज घरमें कोई बीमार है, तो कलको एक मुकदमा लग गया है, परसों व्यापारमें हानि हो गई है, आदि अनेक कठिनाइयो उन्हें घेरे रहती हैं, और वे उनसे छुटकारा पानेके लिये लालायित रहते हैं। ऐसे कठिन समयमें यदि उनको कोई तन्त्र मन्त्र बतला देता है तो वे उसके भक्त बन जाते हैं और उसे ही अपना रक्षक समझ बैठते हैं। ऐसे मनुष्योंकी मनस्तुष्टिके लिये तन्त्र मन्त्र बड़े सहायक होते हैं, उससे उन्हें सान्त्वना मिलती है, उनकी घबराहट दूर होती है, उनमे दृढता और विश्वासकी भावनाका उदय होता है और कदाचित् उसकी आराधनासे यदि उनका काम बन जाता है तब तो कहना ही क्या है ?

असलमे साधारण जनताका दैवी शक्तिपर अटल विश्वास है और वह अपनी सांसारिक कामनाओंके वशीभूत होकर टोटके करनेवाले मनुष्योंके फन्देमें फस जाती है। आजके इस युगमे भी पुत्रकामनासे न जाने कितनी स्त्रियां ठगों और बदमाशोंके फन्देमें पडकर अपना सर्वस्व गवाती हैं, कितनी मस्जिदों, मठों और पीरगाहोंमें जाकर बेवकूफ बनती हैं और कितने ही समझदार मनुष्य तक धोखा खा जाते हैं। ऐसे नासमझ मनुष्योंको दुनियाके जाल फरेबोंसे बचानेके लिये सच्चे मन्त्रो और मान्त्रिकोंका उपयोग आवश्यक है। उसके बिना उन्हें सुमार्गपर नहीं लाया जा सकता। अत जैनधर्ममें मन्त्र शक्ति और मन्त्र शास्त्रोंके होते हुये भी न तो कभी उनकी बाढ आई और न कभी सामान्य

अनिष्ट कारक हैं उनके लिये भी आवश्यक है और जो मन्त्र इष्ट कारक हैं उनके लिये भी उपयोगी है। जैसे मुनिके शरीरसे निकलने वाला तैजस शरीर शुभ भी होता है और अशुभ भी होता है। दोनोंके लिये मुनिका प्रकृष्ट तपस्वी होना आवश्यक है उनके बिना इस प्रकारकी विशेषता उत्पन्न नहीं हो सकती। इसी प्रकार मन्त्र शक्तिके विषयमें भी समझना चाहिये। अन्तर केवल इतना ही है कि अनिष्ट कारक मन्त्र शक्तिका प्रयोग उसके प्रयोक्ताके लिये भी अनिष्ट कारक ही होता है, क्योंकि जो दूसरेका बुरा करना चाहता है उसका भला कभी नहीं हो सकता। अस्तु,

मन्त्र शक्तिका प्रयोग—

आकर्षण, वशीकरण, उच्चाटन विद्वेषण, स्तम्भन, समोहन, साधारणतया ये ही मन्त्रोंकी शक्तियों हैं। या यह कहना चाहिये कि लौकिक कार्यकारी मन्त्रोंके द्वारा प्राय यही कार्य होता है, इन्हींके लिये उनका उपयोग जन साधारण किया करते हैं। किसीका किसीकी तरफसे मन हट गया तो वह उसे अपनी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न करता है, कोई किसीको अपने वशमें करना चाहता है, कोई किसीसे अपनी शत्रुता निकालना चाहता है। इत्यादि कार्योंमे मन्त्र शक्तिका प्रयोग होनेकी बात देखी जाती है। इसमें कहाँ तक सफलता मिलती है यह तो वही बतला सकते हैं जो यह काम करते हैं या जिन्होंने ऐसे कामोंमें मन्त्र शक्तिका प्रयोग करवाया है। फिर भी यह निश्चित है कि सफलता मन्त्र, उसका प्रयोग और प्रयोक्ताकी साधना वगैरहपर ही निर्भर है। यदि मन्त्र ठीक नहीं है, वह किसी सच्चे साधकके द्वारा प्रयुक्त न होकर किसी ठगके द्वारा प्रयुक्त किया गया है, अथवा मन्त्र अशुद्ध है, उसकी अक्षर योजना ठीक नहीं है, अथवा अक्षर योजना ठीक होते हुए भी उसका उच्चारण ठीक नहीं—अशुद्ध पाठ किया

गया है, या पाठ शुद्ध होते हुये भी जप करने वालेका चित्त एकाग्र नहीं है, उसमें उसकी श्रद्धा नहीं है तो मन्त्रशक्ति कार्यकारी नहीं हो सकती। जैसे रोगकी चिकित्साके लिये योग्य वैद्यके द्वारा योग्य औषधिका प्रयोग, उसका यथाविधि सेवन और रोगीका पथ्य परहेज जरूरी है, इनके बिना योग्य औषधि भी कार्यकारी नहीं हो सकती, वैसे ही मंत्र शक्तिके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये। जैसे 'निर्बीजमक्षरं नास्ति' वैसे ही 'नास्ति मूलमनौषधम्' अर्थात् जैसे ऐसा कोई अक्षर नहीं जो शक्तिवाला न हो वैसे ही ऐसी कोई वनस्पति नहीं जो औषधिरूप न हो। आवश्यकता ऐसे जानकार योजककी है जो विभिन्न वनस्पतियोंके मेलसे विभिन्न रोगोंकी औषधी निर्माण कर सके। और औषधी तैयार हो जानेपर ऐसे प्रयोक्ताओंकी आवश्यकता है जो रोगीके अनुरूप औषधीको देखकर उसे उसका प्रयोग करनेकी सलाह वगैरह दे सके। इसके साथ ही रोगीका परिचारक भी ऐसा कुशल व्यक्ति हो जो उचित मात्रामें उचित अनुपानके साथ उचित समयपर औषधीका सेवन करा सके। तथा रोगी भी सच्ची आस्था पूर्वक औषधीका सेवन कर सके। तब जाकर औषधीका फल सुनिश्चित समझा जा सकता है। यदि औषधीका निर्माण ठीक न हुआ हो, जिस औषधीकी जितनी मात्रा नियत है उसी मात्रामें वह औषधी उसमें न डाली गई हो, कोई औषधी कमती और कोई मात्रासे अधिक हो, अथवा औषधीके ठीक होते हुए भी उसकी विधि और अनुपानमें त्रुटि रह गई हो, रोगीका परिचारक लापरवाह हो और रोगी भी अपथ्य सेवी हो तो ठीक औषधी भी फलदायक नहीं हो सकती। यही बात मन्त्रके विषयमें भी जानना चाहिये। बल्कि औषधी सेवनके लिए बरती जानेवाली सावधानीसे भी अधिक सावधानी मन्त्रके लिए जरूरी है। किन्तु खेद है कि

अपनी कमजोरीके कारण डरे बिना नहीं रह सकते। फिर प्राय. लोग विषय कषायोंकी पुष्टिके लिए ही लालायित रहते हैं, इसीके लिए वे मन्त्र साधना भी कर बैठते हैं। ऐसे लोग स्वभावसे ही डरपोक और कायर हुआ करते हैं। उनमें वह दृढता नहीं होती जो एक साधकमें होना जरूरी है। 'कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि'—'करूँगा या मरूँगा' यह संकल्प करके जो इस मार्गपर उतरते हैं वे ही सफलता भी प्राप्त करते हैं। अत किसी भी मन्त्र साधकको जल्दबाजीसे काम नहीं लेना चाहिये और बहुत सोच समझकर ही इस मार्गमें पैर रखना चाहिये तथा बिना किसी योग्य गुरुके आगे नहीं बढ़ना चाहिये। साधारणतया मन्त्र शक्तिके विषयमें ये ऐसी बातें हैं जिनका ध्यान रखना जरूरी है, और इनके बिना मन्त्र शक्तिका लाभ नहीं उठाया जा सकता।

मन्त्र, मन्त्रशक्ति और उसकी साधनाके विषयमें कुछ मोटी मोटी जानकारी करानेके पश्चात् अब प्रकृत विषयपर आते हैं।

नमस्कार मंत्रकी विशेषता—

मन्त्र शास्त्रकी दृष्टिसे नमस्कार मन्त्र विश्वके समस्त मन्त्रोंसे अलौकिक है। यह 'महतो महीयान्' है और 'लघुतो लघीयान्' है। अर्थात् जहाँ यह कुछ बातोंमें महान्से भी महान् है वहीं कुछ बातोंमें यह लघुसे भी अतिशय लघु है—छोटोंसे भी अत्यन्त छोटा है। एक ओर इसकी शक्ति अतुल है, दुनियाकी कोई ऐसी ऋद्धि सिद्धि नहीं है जो इसके द्वारा प्राप्त न की जा सके, किन्तु साधकका इन ऋद्धि सिद्धियोंकी ओरसे निष्काम होना जरूरी है। कामना करके मन्त्रकी आराधना करनेसे उनकी प्राप्तिमें सन्देह है, परन्तु निष्काम होकर मन्त्रकी साधना करनेसे उनकी प्राप्ति सुनिश्चित है। जहाँ विश्वके अन्य मन्त्र कामना करनेसे उसकी पूर्ति करते हैं, वहीं यह मन्त्र निष्काम होनेसे सब कामनाओंकी पूर्ति करता है।

इसका कारण यह है कि यह मन्त्र प्रथम तो इस मनकी आत्म-शक्तिका प्रतिधान है। जिसका यह मन्तव्य है कि यदि पकड़नेके लिए दौड़ो तो अपनी छाया भी आगे-आगे भागती है और यदि इस ओरसे विमुख हो जाओ तो छाया पीछे-पीछे लगी फिरती है। यही दशा संसारकी है। इसमें जिसकी कामना करो—इच्छा करो चाहो, वह नहीं मिलता और दूर भागता है, किन्तु जिसे न चाहो उपेक्षा करो, वह हमारे पीछे पीछे घूमता है। आचार्य समन्तभद्रने लिखा है—

बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो,
नित्यं शिवं वाञ्छति नाऽस्य लाभः।
तथापि बालो भयकामवश्यो
वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः॥—बृहत्स्वयं भू०।

'प्राणी मौतसे डरता है—विष्टेका कीडा भी मरना नहीं चाहता, किन्तु उससे किसीका छुटकारा नहीं है—सभीको मौतके मुहमें जाना ही पडता है। प्रत्येक मनुष्य सदा इस बातकी इच्छा करता है कि कभी भी मेरा कोई अनिष्ट न हो—सदा शुभ ही शुभ हो, किन्तु उसकी यह कामना पूरी नहीं होती—इष्टके साथ अनिष्ट भी लगा ही रहता है। फिर भी यह मूढ प्राणी व्यर्थ ही भय और कामनाके चक्करमें पडकर क्लेश भोगता है।'

अत इच्छा व्यर्थ है, क्योंकि जो हम चाहते हैं वह हमें नहीं मिलता और जो नहीं चाहते वह मिल जाता है। यह बात अपनी आखोंके सामने हम प्रति दिन देखते हैं। जो सन्तानके लिए लालायित रहते हैं, दुनिया भरके गण्डे तावीज कराते हैं, मठों और कब्रिस्तानोंकी खाक छानते हैं उनके चूहेका बच्चा भी नहीं होता और जो बहु सन्तानके मारे परेशान हैं उनके सन्तानपर

सन्तान होती चली जाती है। इसी तरह जो साधु निस्पृह होकर रहते हैं, किसीसे कुछ मागते नहीं और देनेपर लेते नहीं, लोग उनके चरणोंमें सब कुछ अर्पित करनेके लिए तैयार रहते हैं, और जो घर घर मागते डोलते हैं उन्हें सब दुतकारते हैं। इसीसे किसीने कहा है—

'बिन मागे मोती मिले, मागे मिले न भीख'।

संसारकी यह दशा देखकर ही नमस्कार मन्त्रके द्रष्टा ऋषियोंने विश्वको यह अमूल्य सीख दी कि—

त्यज्यते रज्यमानेन राज्येनान्येन वा जनः।
भज्यते त्यज्यमानेन तत्त्यागोऽस्तु विवेकिनाम् ॥

—क्षत्र चूड़ामणि।

'अनुरक्त होनेसे राज्य सम्पदा या अन्य विभूति स्वयं मनुष्यको छोड़ देता है और विरक्त होनेसे उसके चरणोंपर लोटती है। अत विवेकी पुरुषोंको उसका त्याग कर देना ही उचित है।'

दूसरे, नमस्कार मन्त्रके द्वारा जिनकी आराधना की जाती है वे सभी वीतरागी और निस्पृह महात्मा हैं। ऊपर जो शिक्षा दी गई है वह उन्हींकी उपज है–उन्हींका उपदेश है, उन्हींके अपने अनुभवोंका सार है– निचोड़ है। उसका विस्तृत विवेचन आगे किया गया है, उससे पता चलता है कि नमस्कार मन्त्रके आराध्य-देव कितने पुनीत, कितने विशुद्ध और कितने जन कल्याणकारी हैं। उन पवित्र आत्माओंकी पुण्य शक्तिका ही यह प्रताप है जो नमस्कार मंत्र इतना शक्तिशाली है, क्योंकि जड़की शक्तिसे चेतनकी शक्ति अपरिमित है। जड़की शक्ति तो चेतनके हाथका खेल है, वही उसका आविष्कर्ता है और वही उसका रोधक भी है। अत. परिपूर्ण आत्म शक्तिसे युक्त महापुरुषोंकी आराधनासे समाविष्ट

होनेके कारण प्रकृत नमस्कार मंत्र अन्य लौकिक मंत्रोंसे विशिष्ट है। इसीसे जहाँ देवता अन्य मंत्रोंके अधिष्ठाता हैं वहाँ वे इस मंत्रके सेवक रूपमें काम करते हैं। यह इसकी तीसरी विशेषता है।

आशय यह है कि पहले यह बतलाया है कि जो देवतासे अधिष्ठित होता है वह मन्त्र कहलाता है। इस मन्त्रका जप करनेसे उसका स्वामी देवता यदि वशमें कर लिया जाता है तो वह मन्त्र सिद्ध हुआ कहलाता है। किन्तु नमस्कार मन्त्र एक ऐसा प्रभाव शाली मन्त्र है जिसका स्वामी होनेकी शक्ति किसी देवतामें नहीं है। अतः देवता इसके स्वामी न होकर सेवक होते हैं। और जो इस मन्त्रकी आराधना करता है मन्त्रकी भक्तिवश वे उसके भी सेवक बन जाते हैं। साराश यह है कि किसी देवताकी शक्तिके कारण नमस्कार मन्त्र शक्तिशाली नहीं है, किन्तु इसकी शक्तिके कारण देवता तक इसके सेवक हैं। और इसके शक्तिशाली होनेका कारण पहले बतलाया है।

यह सदा ध्यानमें रखना चाहिये कि मनुष्यकी शक्ति देवताओंसे भी अधिक होती है। देवता अधिकसे अधिक चौथे गुणस्थान तक आत्मोन्नति कर सकते हैं। किन्तु मनुष्य चौदहों गुणस्थानपर चढकर मुक्ति तक प्राप्त कर सकता है। जिन तीर्थंकरोंके कल्याणकोंके अवसरपर देवता गण स्वयं भागे भागे आते हैं वे तीर्थंकर मनुष्य ही होते हैं। उनके आनेसे तीर्थंकरका महत्त्व नहीं है किन्तु तीर्थंकरकी महत्तासे वे महिमान्वित होते हैं। जैसा कि एक स्तुतिकारने कहा है—

'इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते
तस्यैवेयं भवलयकरी श्लाघ्यतामातनोति ।'

अर्थात्–'हे जिनेन्द्रदेव ! इन्द्र आपकी सेवा करे उससे आपका

क्या महत्त्व है ? हाँ, आपकी सेवा करनेसे यह संसार समुद्रसे पार अवश्य हो जाता है'।

इन तीर्थंकरोंको और क्रमशः जिन पदोंपर आरोहण करके तीर्थंकर होते हैं उन पदोंकी आराधना नमस्कार मन्त्रके द्वारा की जाती है अतः देवता इस मन्त्रके सेवक हैं। और जो भक्तिभावसे इस मन्त्रकी आराधना करता है धर्मप्रेम वश वे उसकी सेवा करनेके लिए सदा तत्पर रहते हैं। प्रथमानुयोगके ग्रन्थोंमें ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं, जिनमेंसे कुछका उल्लेख आगे किया गया है। अतः इस दृष्टिसे भी प्राकृत नमस्कार मन्त्रका स्थान मन्त्र साहित्यमें बहुत ऊँचा है।

चौथी इसकी विशेषता यह है कि प्रायः मन्त्र अत्यन्त गूढार्थक होते हैं। उनकी शब्दरचना ऐसी होती है कि उनका उच्चारण करना भी कठिन होता है। फिर अर्थकी बात तो निराली ही है, अच्छे अच्छे मन्त्रवेत्ता और साधक तक उनके अर्थसे अपरिचित होते हैं। किन्तु यह मन्त्र इतना सरल है कि प्राकृत भाषाका मामूली जानकार मनुष्य भी सरलतासे इसका मोटा सा अर्थ कर सकता है। और वह अर्थ इस प्रकार है —

'अरहंतोंको नमस्कार, सिद्धोंको नमस्कार, आचार्योंको नमस्कार, उपाध्यायोंको नमस्कार, लोकके सब साधुओंको नमस्कार।'

कितना स्पष्ट अर्थ है जिसमें रंचमात्र भी कठिनाई नहीं है। हो सकता है कि इसकी सरलता देखकर कोई कहे कि यह तो मन्त्र नहीं है, कुछ वाक्योंका संग्रह मात्र है, मन्त्रमें तो गूढार्थक बीजाक्षर हुआ करते हैं। किन्तु ऐसी आशङ्का उचित नहीं है। जिस मन्त्रका जैसा कार्य होता है उसकी शब्द रचना भी उसीके अनुरूप होती है। यह मन्त्र सिद्धि दाता है अतः उसीके अनुरूप उसकी शब्द रचना भी है। फिर भी आकर्षण, वशीकरण आदि जो मन्त्रोंकी शक्तियाँ हैं वे सब शक्तियाँ इस महामन्त्रमें मौजूद

हैं। अन्तर केवल इतना है कि यह महामन्त्र किसी प्रेमीको ओर किसी प्रेमिकाको आकृष्ट नहीं करता और न किसी स्त्री या पुरुषपर मोहन-मन्त्र डालनेका काम ही करता है। इसी तरह इसके द्वारा किसी व्यक्तिका उच्चाटन या मारण भी नहीं होता। वास्तवमें तो यह मन्त्र देवसपदा दिलानेकी शक्ति रखता है मुक्ति रूपी लक्ष्मीके लिए वशीकरण है, सासारिक कष्टों और विपत्तियोंका सहारक है, पापका शत्रु है और ससारकी जड़ जो मोह है, उसे जड़ मूलसे उखाडकर फेंक देनेवाला है, किन्तु किसी अपने विपक्षीको इसके द्वारा हानि नहीं पहुचायी जा सकती। यह तो प्राणिमात्रका रक्षक है और बुराई मात्रका भक्षक है। इससे आप इष्टकी प्राप्ति कर सकते हैं और अनिष्टसे बच सकते हैं किन्तु दूसरोका बुरा नहीं कर सकते, उनको हानि नहीं पहुचा सकते। यही इस मन्त्रकी सब-से बडी विशेषता है। दूसरे शब्दोंमें यह एक अहिंसक मन्त्र है, अहिंसक ही इसके आराध्य हैं और अहिंसक ही इसकी आराधना कर सकता है। इसीसे इसकी शब्दावली भी कटु नहीं, किन्तु कोमल है। इन सब विशेषताओंके कारण तो यह मन्त्र 'महतो महीयान्' है—बड़ोसे भी बडा है। किन्तु इसकी साधना सरल-से भी सरल है—उसके लिए किसी बडे भारी बाहिरी आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है। यद्यपि जो इस मन्त्रकी सविधि उपासना करना चाहते हैं उनके लिए यथोचित विधि भी शास्त्रोंमें बतलायी गयी है। जिसका सक्षिप्त रूप आगे दिया जायगा। किन्तु जो वैसा करनेमें असमर्थ हैं, वे केवल इसका ध्यान करने मात्रसे ही इष्ट फलको प्राप्त कर सकते हैं, जैसा कि कहा है—

'अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत पञ्चनमस्कार सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥'

अर्थात्—'अपवित्र हो या पवित्र हो, उचित रीतिमें स्थित हो या किसी भी स्थितिमें हो, जो पञ्च नमस्कार मन्त्रका ध्यान करता है वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

प्रथमानुयोगके कथा ग्रन्थोंमें बतलाया है कि कैसे-कैसे अधम जीव इस मन्त्रके शब्द कानमें पड़ने मात्रसे तिर गये। इसीसे महामन्त्र होते हुए भी यह 'लघुनो लघीयान्' है—लघुसे भी लघु है। सब तक इसकी पहुँच है अथवा यह कहिये कि सबकी इस तक पहुँच है। पापी-से-पापी जीव इसका ध्यान करके पापसे मुक्त हो जाता है। ऐसा यह महामन्त्र है। जो मन्त्र शास्त्रकी दृष्टिसे अद्भुत होते हुए भी सबके लिए सुलभ है।

आगमिक साहित्य और नमस्कार मंत्र—

जब जैन धर्ममें इस नमस्कार मन्त्रका इतना माहात्म्य है और जैनोंके सभी सम्प्रदायोंमें इसकी इतनी अधिक मान्यता है तो यह जाननेकी उत्कण्ठा होना स्वाभाविक है कि जिस आगमिक साहित्यका भगवान महावीरकी वाणीसे निकट सम्बन्ध बतलाया जाता है और जो समस्त जैन साहित्यका मूल है उसमें इस नमस्कार मन्त्रकी क्या स्थिति है? क्यों कि श्वेताम्बरीय लघु नवकार फलमें इस मन्त्रका माहात्म्य बतलाते हुए इसे जैन शासनका सार और चौदह पूर्वोंका उद्धाररूप कहा है। यथा—

'जिण सासणस्स सारो चउदसपुव्वाण जो समुद्धारो।
जस्स मणे नवकारो संसारो तस्स किं कुणइ?

अर्थात्—जो जिन शासनका सार है और चौदह पूर्वोंका उद्धाररूप है ऐसा नमस्कार मन्त्र जिसके मनमें है, संसार उसका क्या कर सकता है?

अतः जिसे एक स्तुतिमें चौदह पूर्वोंका उद्धार रूप बतलाया

है उसके सम्बन्धमें यह जानकारी इच्छा स्वाभाविक है कि आग-मिक साहित्यका इस विषयमें क्या मन्तव्य है और वह व्यक्ति कौन है जिसने इस महामन्त्रका चौदह पूर्वोंसे उद्धार किया अथवा इस महामन्त्रकी किसने रचना की ?

श्वेताम्बर महानिशीथ[१] सूत्रने इस मन्त्रको 'महाश्रुतस्कन्ध' जैसे प्रभावक विशेषणसे अभिहित किया है और लिखा है कि अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शनके धारक तीर्थंकरोंने इस पंचमंगल महाश्रुतस्कन्धका जैसा व्याख्यान किया था उसीके अनुसार संक्षेपमें निर्युक्ति भाष्य और चूर्णिके द्वारा बड़े प्रबन्धसे उसका व्याख्यान निबद्ध किया गया था। किन्तु कालके दोषसे वे निर्युक्ति, चूर्णि और भाष्य नष्ट हो गये। तब समय बीतनेपर द्वादशांग श्रुतके धारी और पदानुसारी महर्द्धिसे विशिष्ट वज्र स्वामी मुनि हुए। उन्होंने पंचमंगल महाश्रुतस्कन्धका उद्धार करके उसे मूल सूत्रके मध्यमें लिखा। मूल सूत्रके सूत्रकार तो गणधर देव हैं और अर्थ रूपसे उसके वक्ता त्रिलोकमें पूजित भगवान तीर्थंकर श्री वीर जिनेन्द्र देव हैं ऐसा वृद्ध सम्प्रदाय है।

१–एयं तु पंचमंगल महासुयक्खंधस्स वक्खाणं, तं महया पबंधेणं अणंतगमपज्जवेहिं सुत्तस्स पिहब्भूयाहिं णिज्जुत्तिभासचुन्नीहिं जहेव अणंत-नाणदंसणधरेहिं तित्थयरेहिं वक्खाणियं, तहेव समासओ वक्खाणिज्जंतं आसि, अहन्नया कालपरिहाणिदोसेण ताओ णिज्जुत्तिभासचुन्नीओ वुच्छिन्नाओ। इओ य वच्चंतेणं कालेणं समएणं महड्ढिपत्ते पयाणुसारी वइरसामी नाम दुवालसंग सुयहरे समुप्पन्ने। तेणं य पंचमंगलमहा सुयक्खंधस्स उद्धारो मूलसुत्तस्स मज्झे लिहिओ। मूलसुत्तं पुण सुत्तत्ताए गणहरेहिं, अत्थत्ताए अरिहंतेहिं भगवंतेहिं धम्मतित्थयरेहिं तिलोगमहिएहिं वीरजिणिंदेहिं पन्नवियं ति एस वुड्ढसंपयाओ। –महानि०

नमस्कारके अनादित्वपर विचार—

उक्त उल्लेखसे जहा आगमिक साहित्यमे नमस्कार मंत्रकी अत्यन्त आदरणीय स्थितिपर प्रकाश पड़ता है वहीं इस बातका भी स्पष्टीकरण हो जाता है कि यह मंत्र साक्षात् भगवत् वाणीसे सम्बद्ध है और इसका कोई कर्ता नहीं है। हा, शब्दकारके रूपमे गणधर देवका नाम लिया जा सकता है। परम्परामे भी यही सुना जाता है कि यह मत्र अनादि है जैसा कि लघुनवकार फलमे कहा है—

'एमो अणाइ कालो, अणाइ जीवो अणाइ जिणधम्मो।
तइया वि ते पढता एसुच्चिय जिणणमुक्कार ॥ १६ ॥
जे केइ गया मोक्खं गच्छंति य केऽवि कम्मफलमुक्का।
ते सव्वे वि य जाणसु, जिण नवकार प्पभावेण ॥ १७ ॥

अर्थात्—'काल भी अनादि है, जीव भी अनादि है और जिन धर्म भी अनादि है तभीसे वे सब नमस्कार मन्त्रको पढते हैं। जो कर्म मलसे छूट कर मोक्षको गये हैं अथवा जाते हैं (और जायेंगे) वे सब नमस्कारमत्रके प्रभावसे ही जानने चाहिये।'

एक प्राचीन कवितामें भी कहा है—

"आगे चौवीसी हुई अनंती, हो सी वार अनत।
नवकार तणी कोइ आदि न जाणे, एम भाखे अरिहंत।"

अर्थात्—अरहंत भगवान्का कहना है कि अनन्त चौबीसी हो चुकीं और अनन्त चौबीसी आगे होंगी। किन्तु नमस्कार मत्रके आदिकी कोई नहीं जानता। अर्थात् यह मत्र अनादि है।

दिगम्बर सम्प्रदायमें भी परम्परासे यही मान्यता प्रचलित है। इसीसे इसे अनादि-मूल-मत्र कहा जाता है। जैसे श्वेताम्बर सम्प्रदायके भगवतीसूत्रका यह मत्र आदि मगल है वैसे ही दिग-

म्बर सम्प्रदायके द्वारा आगम रूपसे मान्य प्राचीन षट्खण्डागम नामक ग्रंथराजका भी यह आदि मंगल है। जब तक यह ग्रंथ प्रकाशमें नहीं आया था तब तक नमस्कार मन्त्रके कर्तृत्वको लेकर दिगम्बर सम्प्रदायमें कभी कोई चर्चा ही नहीं उठी थी क्योंकि मन्त्रकी अनादितापर सभीका विश्वास था। किन्तु इस ग्रंथके प्रकाशमें आने पर ग्रन्थके टीकाकार श्री वीरसेन स्वामीके द्वारा अपनी टीकामें उठायी गयी एक चर्चामें यह विषय विवादग्रस्त बन गया है। वह चर्चा इस प्रकार है—

षट्खण्डागमके प्रथम खण्ड जीवट्ठाणके प्रारम्भमें यही मंत्र मंगल[1] रूपमें पाया जाता है। इसी उत्थानिका करते हुए वीर सेन स्वामीने लिखा है—

'मंगल निमित्त, हेतु, परिणाम, नाम, और कर्त्ता इन छह का कथन करके पश्चात् आचार्यको शास्त्रका व्याख्यान करना चाहिये। आचार्य परम्परासे आये हुए इस न्यायको मनमें धारण करके और पूर्वाचार्योंके आचारका अनुसरण करना रत्नत्रयका कारण है, यह मान कर आचार्य पुष्पदन्त मंगल आदि छह अधिकारोंका सकारण व्याख्यान करनेके लिए सूत्र कहते हैं—णमो अरिहंताणं आदि।'

आगे मंगलका व्याख्यान करते हुए वीरसेनाचार्यने लिखा* है—

१—"मंगल णिमित्त हेऊ परिमाणं णाम तह य कत्तारं। वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरियो॥ इदि णायमाइरिय-परंपरागयं मणेणावहारिय पुव्वाइरियायाराणुसरणं तिरयणहेउ त्ति पुप्फदंताइरियो मंगलादीणं छण्णं सकारणाणं परूवणट्ठं सुत्तमाह—णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं। णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

*'तच्च मंगलं दुविहं णिबद्धमणिबद्धमिदि। तत्थ णिबद्धं णाम जो

मंगल दो प्रकारका होता है—निबद्ध मंगल और अनिबद्ध मंगल। जो ग्रन्थके आदिमें ग्रन्थकारके द्वारा देवता-नमस्कार निबद्ध कर दिया जाता है वह निबद्ध मंगल है। और जो ग्रन्थके आदिमें ग्रन्थकारके द्वारा देवता नमस्कार किया जाता है वह अनिबद्ध मंगल है। यह जीवस्थान नामका प्रथम खण्ड निबद्ध मंगल है, क्योंकि 'इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाण' इत्यादि सूत्रके पहले निबद्ध 'णमो अरिहंताण' इत्यादि देवता नमस्कार देखा जाता है।'

इससे तो इतना ही सिद्ध होता है कि जीवट्ठाणके प्रारंभमें आचार्य पुष्पदन्तने 'णमो अरिहंताण' इत्यादि मंगल रचा है इसलिए वह ग्रन्थ निबद्ध मंगल है। यदि वे इस मंगलको ग्रन्थके प्रारंभमें मौखिक रूपसे करलेते और लिखित रूपसे न रखते तो यह ग्रन्थ अनिबद्ध मंगल कहलाता। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि पुष्पदन्त आचार्यने इस मंगलको स्वयं रचा है, किन्तु इसी षट्खण्डागमके वेदनाखण्डके आदिमें 'णमोजिणाणं' इत्यादि मंगल सूत्र पाये जाते हैं। उनकी टीका करते हुए वीरसेन स्वामीने निबद्ध और अनिबद्धसे उसका क्या अभिप्राय है यह स्पष्ट कर दिया है। वे लिखते हैं—

"यह मंगल निबद्ध है या अनिबद्ध। यह निबद्ध मंगल तो है नहीं, क्योंकि महाकर्म प्रकृति प्राभृतके कृति आदि चौबीस अनुयोग द्वारोंके आदिमें गौतम स्वामीने इस मंगलका कथन किया

सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धदेवदा णमोक्कारो तं णिबद्धमंगलं जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेवदा णमोक्कारो तमणिबद्धमंगलं। इदं पुण जीवट्ठाणं णिबद्धमंगलं। यत्तो 'इमेसिं चोद्दसण्हं जीव समासाणं' इदि एदस्स सुत्तस्सादीए णिबद्ध 'णमोअरिहंताणं' इच्चादि देवदा णमोक्कार दंसणादो।' —षट्खण्डागम, पु १, पृ० ४१।

है और भूतिबलि भट्टारकने उसे वहाँसे उठाकर वेदनाखण्डके आदिमे मगलके लिए रख दिया है। अत इसके निबद्ध मङ्गल होनेमे विरोध आता है, क्योकि न तो वेदना खण्ड महा कर्म प्रकृति पाहुड है क्योकि अवयव अवयवी नहीं हो सकता। और न भूतवली गौतम हैं क्योकि विकल श्रुतके धारक और धरसेनाचार्यके शिष्य भूतबलिको सकल श्रुतके धारक और वर्धमान स्वामीके शिष्य गौतम माननेमे विरोध आता है। और कोई प्रकार निबद्ध मङ्गलका हेतु हो नहीं सकता[1]"।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दूसरेके द्वारा रचे गये मङ्गलको उठाकर अपने ग्रन्थके आदिमे रख देनेसे कोई मङ्गल निबद्ध मङ्गल नहीं कहा जाता, किन्तु स्वय ग्रन्थकारके ही द्वारा रचा जाकर जो मङ्गल ग्रन्थके आदिमे रखा जाता है वही निबद्ध मङ्गल है। अत चूँकि वीरसेन स्वामी जीवट्ठाणके प्रारम्भमे रखे हुए णमोकार मन्त्रको निबद्ध मङ्गल बतलाते हैं, इस लिए वे इसे ग्रथकार पुष्पदन्ताचार्यकी ही कृति मानते हैं यह स्पष्ट है।

अब वीरसेन स्वामीके इस लेखको महानिशीथ सूत्रके उल्लेखके साथ मिलाकर विचार करना चाहिये।

ऐतिहासिक पर्यवेक्षकोका ऐसा मत है कि महानिशीथ सूत्र बहुत बादकी रचना है। पचमङ्गल महाश्रुतस्कन्धके सम्बन्धमे हमने जो उद्धरण पहले दिया है। उसके आगे ही महानिशीथमे लिखा है—

१—'तत्थेदं किं णिबद्धमाहो अणिबद्धमिदि। ण ताव णिबद्धमंगलमिदं, महाकम्मपयडि पाहुडस्स कदि आदि चउवीस अणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परूविदस्स भूदबलि भडारएण वेयणाखंडस्स आदीए मंगलट्ठं तत्तो आणेदूण ठविदस्स णिबद्धत्त विरोहादो। ण च वेयणाखंडं महाकम्म पयडिपाहुडं अवयवस्स अवयवित्त विरोहादो। ण च भूदबली

यशोवर्धन क्षमाश्रमण, रविगुप्त, नेमिचन्द्र, जिनदासगणि, सत्य-श्री आदि अन्य अनेक युग प्रधान श्रुतधरोंने इसे बहुत माना"।

महानिशीथ सूत्रमे ही पाये जाने वाले इस उल्लेखसे इतना तो स्पष्ट है कि जिस प्रति परसे महानिशीथका उद्धार किया गया वह प्रचीन थी। किन्तु इसमे जिन आचार्योंका उल्लेख है उस परसे वह पीछेका ग्रन्थ ज्ञात पडता है। फिर भी उसमे जो यह लिखा है कि पचमङ्गल श्रुतस्कन्धका उद्धार वज्रस्वामीने करके उसे मूल सूत्रके मध्यमें लिख दिया, इसमे एक प्राचीन मान्यताका उल्लेख समझना चाहिये। श्वेताम्बरोंमे मूलसूत्र चार माने जाते हैं--आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन और पिण्डनिर्युक्ति। इनमेंसे आवश्यक, सूत्रके मध्यमे नमस्कार मन्त्र पाया जाता है। किन्तु उसका तथा अन्य तीन मूल सूत्रोका वज्रस्वामीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

तपागच्छकी पट्टावलीमे बतलाया गया है कि वीर निर्वाणसे ४९६ वर्ष पश्चात् वज्रस्वामीका जन्म हुआ और ५८४ वर्ष पश्चात् स्वर्गवास हुआ। तथा उसीमें यह भी लिखा है कि वज्र-स्वामीने दक्षिणमे बौद्ध राज्यमें जाकर जैन धर्मको प्रभावना की थी। इस पट्टावलीसे लगभग ३२५ वर्ष पुरानी एक दूसरी पट्टावली है जिसका नाम है 'सिरी दुसमाकाल समणसघथय'। इसमे भी एक वज्र नामके आचार्यका उल्लेख है और उनका समय वीरनिर्वाणसे ६१७ वर्ष पश्चात् पाया जाता है। कल्पसूत्रकी स्थविरावलीमे इन दोनोंको गुरु शिष्य बतलाया है। इसी समयके लगभग दक्षिणमें पुष्पदन्ताचार्यने पट्खण्डागमकी रचना की थी, जिसका आदि मङ्गल नमस्कार मन्त्र है, जिसे टीकाकार वीर सेन पुष्पदन्तकृत बतलाते हैं।

महानिशीथ सूत्रके इस उल्लेखमे कि वज्रस्वामीने पञ्चमङ्गल

श्रुतस्कन्धका उद्धार किया तथा धवला टीकाके इस उल्लेखमें कि आचार्य पुष्पदन्तने अपने ग्रन्थके आदि मंगल नमस्कार मन्त्रको स्वयं बनाया, क्या तुक सम्बन्ध है, कुछ नहीं कहा जा सकता।

इसके सिवा खारवेलके प्रसिद्ध शिलालेखका आरम्भ 'णमो अरहन्ताण णमो सिद्धाण' से होता है। ये दो पद नमस्कार मन्त्रके आद्यपद हैं और जैन मूलमन्त्रसे ही लिये गये हैं। इस लेखका समय विक्रमकी दूसरी शती सुनिश्चित है। यह समय भी श्री पुष्प-दन्ताचार्यके लगभग समकालीन सा ही पड़ता है। फिर भी बिना विशेष खोजके किसी निर्णयपर पहुँचना उचित नहीं है। तथा परम्परासे तो यह मन्त्र अनादि ही माना जाता है।

दूसरे, इस मन्त्रमें किन्हीं व्यक्ति विशेषोंको नमस्कार न करके उन पाँच पदोंको नमस्कार किया गया है जो जैन धर्ममें सदासे परम-पद माने जाते रहे हैं और आगे भी सदा परमपद माने जाते रहेंगे। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालमें चौबीस तीर्थंकर बदल जाते हैं, उनके गणधर बदल जाते हैं और श्रुतधर भी दूसरे दूसरे होते रहते हैं, किन्तु ये पांच पद तो सदा अपरिवर्तनीय हैं। अतः जो इन पदोंपर विराजमान होंगे वे सदा नमस्कार किये जायगे। इस दृष्टिसे भी यह मन्त्र अनादि होना ही चाहिये। किन्तु महानिशीथ सूत्रके उक्त उल्लेखोंमेंसे एक बात विशेष ध्यान देनेकी है। उसमें लिखा है कि 'वज्रस्वामीने पंच मङ्गल (नमस्कार मन्त्र) का उद्धार करके उसे मूल सूत्रोंके मध्यमें लिख दिया। और मूल सूत्रोंके शब्दकर्ता गणधर हैं और अर्थकर्ता भगवान् महावीर हैं।' इस परसे ऐसा ध्वनित होता है कि वज्र स्वामीने अपने द्वारा उद्धार किये गये पंचमंगलसूत्रको मूल सूत्र ही समझा। इसीसे उसे मूल सूत्रोंके मध्यमें लिखा। तथा चूंकि मूलसूत्रोंके अर्थकर्ता भगवान् महावीर हैं और शब्दकर्ता गणधर अतः पञ्चमङ्गल

सूत्रके अर्थकर्ता भी भगवान् महावीर ही कहलाये। और ऐसा होनेमें कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि जैन शासनमे पाँच पद नमस्करणीय हैं यह बात और उन पाँचों पदोंके नाम तो भगवान्ने ही बतलाये होंगे। प्रश्न केवल शब्दकर्ताका रह जाता है कि वर्तमानमे प्रचलित नमस्कार मन्त्रका शब्दकार कौन है ? क्या गौतम गणधर हैं अथवा कोई अन्य श्रुतधर है ? प्रसङ्गवश यहा एक घटनाका उल्लेख करना अनुचित न होगा।

कुछ वर्ष हुए एक भाषाशास्त्रविद्ने इन पक्तियोके लेखकसे यह प्रश्न किया था कि आप लोग अपने नमस्कार मन्त्रको अनादि बतलाते हैं किन्तु उसकी शब्द योजना तो भाषा शास्त्रकी दृष्टिसे अधिक प्राचीन नहीं सिद्ध होती। मैंने उन्हें यही उत्तर दिया था कि हमारे इस मन्त्रकी अर्थयोजना अनादि है शब्द योजनापर तो समयका प्रभाव पड़ सकता है, अस्तु।

नमस्कार मन्त्रका स्वरूप—

मन्त्रके कर्ताका विचार करनेके पश्चात् मत्रके स्वरूपके सबधमे भी विचार करना आवश्यक है। हो सकता है उससे भी प्रकृत विषयपर कुछ प्रकाश पड़ सके। दूसरे मत्रका स्वरूप भी निश्चित होना आवश्यक है उसके विना ध्यान वगैरहकी प्रक्रिया नहीं वन सकती।

दिगम्बर सम्प्रदायमे नमस्कार मन्त्रका केवल एक ही रूप पाया जाता है जो इस निवन्धके प्रारम्भमें दिया है वही सर्वत्र प्रचलित है। न उसमे कोई पाठ भेद है और न कोई अक्षर भेद है। पैंतीस अक्षरका नमस्कार मन्त्र ही दिगम्बर सम्प्रदायमे आराध्य है। उसमे किसी भी तरहका कोई मतभेद नहीं पाया जाता।

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें कुछ भेद प्रतीत होता है जैसा कि श्वेताम्बर साहित्यके अवलोकनसे पता चलता है। हम पहले लिख आये हैं कि भगवती सूत्रके प्रारम्भमें नमस्कार मन्त्र दिया हुआ है। भगवतीसूत्रका जैन भास्करोदय जामनगरसे प्रकाशित संस्करण हमारे सामने है। उसमें अभयदेव सूरिकी संस्कृत टीका भी मुद्रित है। इस प्रतिमें तो नमस्कार मन्त्रका वही पाठ दिया है जो हम पहले दे आये हैं तथा जो दिगम्बर सम्प्रदायमें प्रचलित है। किन्तु अभयदेव सूरिकी टीकामें यह स्पष्ट है कि मूलपाठ 'णमो सव्वसाहूणं' है, 'णमो लोए सव्वसाहूणं' नहीं है। टीकाकारने अपनी टीकामें 'णमो लोए सव्वसाहूणं' ति क्वचित पाठः लिखकर उसे पाठभेद बतलाया है। ज्ञात होता है कि चूंकि दूसरा पाठ ही सर्वत्र प्रचलित है अत प्रकाशक महोदयने मूलपाठ भी वही रखा है। अस्तु, यह तो कोई विशेष अन्तर नहीं कहा जा सकता।

किन्तु अभिधानराजेन्द्र नामक आगमिक कोषग्रन्थमें (पृष्ठ १८३५) भगवतीसे जो पाठ दिया है उसमें अन्तिम पद ही नहीं है और उसके स्थानमें 'णमो बंभीए लिवीए' यह पद है। अर्थात उसका पाठ इस प्रकार है—

'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो बंभीए लिवीए॥'

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि भ० सू० की उक्त प्रतिमें 'णमो बंभीए लिवीए' सूत्र नं० २ है उसका नमस्कार मन्त्रसे कोई संबंध नहीं बतलाया है। उक्त कोषसे ही यह भी पता चलता है कि दशा श्रुतस्कन्ध नामक ग्रन्थमें भी यही पाठ है जो अभी ऊपर दिया है। यह पाठभेद बहुत महत्त्वका है क्योंकि इसमें पाचवा पद 'णमो लोए सव्वसाहूणं' न होकर 'णमो बंभीए

लिवीए' है। अर्थात् साधुओंके स्थानमें ब्राह्मी लिपिको नमस्कार किया गया है, जो सगत प्रतीत नहीं होता। किन्तु अभि० रा० जैसे कोपग्रन्थमें उसका उल्लेख होनेसे उसे एक दम भ्रमपूर्ण भी नहीं कहा जा सकता। फिर भी इस पाठवाला नमस्कार मत्र श्वेताम्बर सम्प्रदायमें कभी प्रचलित रहा हो, ऐसा कोई सकेत भी नहीं मिलता। तथा इस पाठको उत्तर कालीन किसी शास्त्रकारने नहीं अपनाया। अत यही मानना चाहिये कि समस्त जैन सम्प्रदायमें पच नमस्कार मन्त्रका एक ही स्वरूप मान्य रहा है जो इस निबन्धके प्रारभमें दिया है।

नमस्कार मन्त्र या नवकार मन्त्र—

किन्तु समस्त जैन सम्प्रदायमें मत्रका एक रूप मान्य होनेपर भी एक दूसरा प्रश्न विचारणीय हो जाता है और वह यह है कि इसे नवकार मत्र भी कहते हैं। बल्कि यह कहना चाहिये कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें तो यह मत्र नवकार मन्त्र ही कहा जाता है, जिसका देशीरूप नौकार मन्त्र दिगम्बर सम्प्रदायमें भी प्रचलित है। वैसे तो दिगम्बरोंमे णमोकार मन्त्र नाम ही अधिक प्रचलित है जिसका सस्कृत रूप नमस्कार मन्त्र है। अब प्रश्न यह है कि इस मन्त्रका नाम नमस्कार मन्त्र है या नवकार अथवा दोनों हैं।

श्वेताम्बरोंके चैत्यवन्दन भाष्यमें एक गाथा इस प्रकार है—

वन्नऽट्ठ सट्ठि नव पय नवकारे अट्ठ सपया तत्थ।
सग सपय पयतुल्ला सतरक्खर अट्ठमी दुपया॥ ३०

इसमें बतलाया है कि नमस्कार मन्त्रमें अड़सठ अक्षर होते हैं, नौ पद होते हैं, आठ सपत् यानी विश्राम-स्थान होते हैं। उनमें सात विराम स्थान तो पदके समान होते हैं किन्तु आठवें

विराम स्थानमें सत्तरह अक्षर और दो पद होते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है—

नमस्कार मन्त्रके साथ एक पद्य और है जिसमें उसका माहात्म्य बतलाया गया है। वह पद्य इस प्रकार है—

एसो पंचणमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

इसमें बतलाया है कि यह पंच नमस्कार मन्त्र सब पापोंका नाश करनेवाला है और सब मंगलोंमें प्रथम मंगल है।

उक्त पंच नमस्कार मन्त्रके साथ इस माहात्म्य सूचक पद्यको मिला देनेसे इसमें अड़सठ अक्षर हो जाते हैं। क्योंकि पंच नमस्कार मन्त्रके पांच पदोंके पैंतीस अक्षर होते हैं और इस दूसरे पद्यमें तैंतीस अक्षर हैं। दोनोंको जोड़नेसे ६८ अक्षर हुए। जैसा कि नमस्कार पञ्जिका और सिद्धचक्र वगैरहमें भी कहा है—

'पंच पयाण पणतीस वण्ण चूलाइ वण्ण तित्तीसं।
एवं इमो समप्पइ फुडमक्खर अट्ठसट्ठीए॥'

तथा नौ पद हैं—नमस्कार मन्त्रमें पाँच पद हैं इस दूसरे पद्यमें ४ पद हैं। जैसा कि कहा है—

'सत्त पण सत्त सत्तय नव अट्ठय अट्ठ अट्ठ नव हुंति'।
इय पय अक्खर संखा, असम हु पूरेइ अडसट्ठी॥'

अर्थात्—'णमो अरिहन्ताणं' इस पहले पदमें सात अक्षर हैं। 'णमो सिद्धाणं' इस दूसरे पदमें पाँच अक्षर हैं। 'णमो आयरियाणं' इस तीसरे पदमें सात अक्षर हैं। 'णमो उवज्झायाणं' इस चौथे पदमें सात अक्षर हैं। 'णमो लोए सव्वसाहूणं' इस पाँचवें पदमें

नौ अक्षर है। 'एसो पच णमुक्कारो' इस छठे पदमे 'सव्वपाव-प्पणासणो' इस सातवें पदमे और 'मगलाण च सव्वेसि' इस आठवें पदमे आठ आठ अक्षर है। और 'पढम हवइ मगल' इस नवम पदमें नौ अक्षर हैं। इन नौ पदोंके अक्षरोंको जोडनेसे [७+५+७+७+९+८+८+८+९=६८] समस्त अक्षरोंका जोड ६८ होता है।

तथा नौ पदोंके आठ विराम स्थान हैं, क्योंकि प्रत्येक पदका उच्चारण करनेके वाद थोडी देर रुकना होता है। अत यह शका हो सकती है कि नौ पदोंके विराम स्थान नौ ही होने चाहिये आठ क्यों हैं? इसका उत्तर यह है कि शुरूके सात पदोंके तो सात विराम स्थान हैं, किन्तु आठवां विराम स्थान आठवें और नौवें पदोंके उच्चारणके वाद होता है। यथा—'मगलाण च सव्वेसिं पढम हवइ मगल।' ये दोनों पद एक साथ उच्चारण करने चाहिये। इनके वीचमे विराम नहीं है। इसीसे आठवें विराममे दो पद और सतरह अक्षर वतलाये हैं।

इस तरह चूलिकाके ३३ अक्षरोके साथ नमस्कार मन्त्रको पढनेका विधान श्वेताम्वर साहित्यमे पाया जाता है। जैसा कि 'वृहन्नमस्कार फळ' मे लिखा है—

'सत्त पण सत्त सत्त य नवक्खर पमाण पयड पच पय।
तित्तीसक्खर चूल सुमरह नवकार वरमतं ॥'

अर्थात्—सात, पॉच, सात, सात और नौ अक्षरवाले पॉच पदों तथा तेतीस अक्षरकी चूलिकाको मिलाकर नवकार मत्रका स्मरण करो।

इसका यह मतलव हुआ कि यत श्वेताम्वर साहित्यमे चूलिका सहित नमस्कार मन्त्रको पढनेका विधान है अत नमस्कार मन्त्रके

पाँच और चूलिकाके चार इस तरह नौ पदोंको मिलाकर श्वेताम्बर सम्प्रदायमें यह मन्त्र नवकारके नामसे प्रसिद्ध है।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि नवकारके सम्बन्धमें ऊपर जिन ग्रन्थोंसे प्रमाण दिये हैं वे आगमकी कोटिमें नहीं आते। अत यह जाननेकी उत्कण्ठा होना स्वाभाविक है कि इसका कोई आगमिक आधार है या नहीं। हमें खोजसे प्रतीत हुआ है कि महानिशीथ सूत्रके सिवा अन्य किसी आगमिक साहित्यमें नौ पदों वगैरहकी चर्चा नहीं है।

महानिशीथका सूत्र इस प्रकार है—

'तहेव च तदत्थाणुगामियं इक्कारसपयपरिच्छिन्नं ति आलावगतित्तीसऽक्खरपरिमाणं। एसो पंचनमुक्कारो ....इय चूलत्ति अहिज्जंति ति।'

महानिशीथके सूत्रको उद्धृत करके चैत्यवन्दन भाष्यके टीकाकारने उक्त ३० वीं गाथाकी टीकामें लिखा[1] है—

'महानिशीथ सूत्रके सिवा वर्तमानमें उपलब्ध आगम सूत्रोंमेंसे किसीमें भी इस प्रकार नौ पद और आठ विरामादि युक्त नमस्कार मन्त्र नहीं पाया जाता। क्योंकि भगवती सूत्र वगैरहमें 'णमो अरिहंताणं' इत्यादि पाँच पद ही कहे हैं। प्रत्याख्यान निर्युक्तिमें नमस्कार सहित प्रत्याख्यान पारणाके प्रस्तावमें चूर्णिमें

१—"अन्यत्र तु सम्प्रति वर्तमानागमसूत्रमध्ये न कुत्रापीय नवपद-अष्टसंपदादिप्रमाणो नमस्कार उक्तो दृश्यते, यतो भगवत्यादौ चैव पञ्च पदान्युक्तानि—नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो (लोए) सव्वसाहूणं, नमो बभीए लिवीए इत्यादि। क्वचित्नमो लोए सव्वसाहूणं ति पाठ इति तद्वृत्ति.। प्रत्याख्याननिर्युक्तौ तु नमस्कारसहितप्रत्याख्यानपारणप्रस्तावे चूर्णाविदमुक्त—

लिखा है कि 'णमो अरिहंताणं' आदि पाँच पदोंको बोलकर पारणा करता है। नवकार निर्युक्ति चूर्णिमें कहा है—उस नमस्कारमें क्रमसे ६ पद अथवा दस पद होते हैं। ६ पद तो इस प्रकार है—'णमो[1] अरिहंत[2] सिद्ध[3] आयरिय[4] उवज्झाय[5] साहूण[6]।' और नमो[1] अरिहंताणं[2] णमो[3] सिद्धाणं[4] इस तरह नमस्कार मन्त्रके पदोंको गिननेसे दस पद होते है।' नमस्कार निर्युक्तिमें जो ८० पद प्रमाण बीस गाथाएँ हैं वे नवकारका माहात्म्य बतलाती हैं किंतु नवकार-रूप नहीं हैं क्योंकि उनमें तो बहुतसे पद हैं, और नवकार तो नौ पद रूप ही है। फिर भी उन गाथाओंकी सौ दो सौ वर्षकी प्राचीन प्रतियोंमें 'हवइ' पाठ पाया जाता है। श्री मलयगिरिने भी आवश्यक सूत्रकी वृत्तिमें वे गाथाएँ हवइ' पाठके साथ ही उद्धृत की है। जो इसका निश्चय करना चाहे उसे वह वृत्ति देखना

नमो अरिहंताणं" भणित्वा पारयति। नवकारनिर्युक्तिचूर्णौ त्वेवमुक्तं— तथाहि, सो नमुक्कारो कमा छ पयाणि वा दस वा। तत्थ छ पयाणि नमो अरिहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय साहूण त्ति। दस पुनेव नमो[1] अरिहंताणं[2] नमो[3] सिद्धाणं[4] इत्यादि। यत्पुन नमस्कारनिर्युक्तौ अशीतिपदमाना विंशतिर्गाथा सन्ति यथा—अरिहंत नमुक्कारो इत्यादय, ता नवकार-माहात्म्यप्रतिपादिका न पुननवकाररूपा भवितुमर्हन्ति, बहुपदत्वात्तासां, नवकारस्य तु नवपदात्मकत्वात्। किञ्च तास्वपि गाथासु वर्षशतात् तद्द्वयाच्च पूर्वपूर्वतरप्रतिषु 'हवइ' इति पाठो दृश्यते। श्रीमलयगिरिणाऽप्यावश्यकवृत्तिं कुर्वता वृत्तिमध्ये ता गाथा 'हवइ' इति पाठत एव लिखिता। एतन्निश्चयार्थिना तद्वृत्तिर्निरीक्षणीया इति परमार्थं ज्ञात्वा कदाग्रहाभिनिवेशान्निर्गलित आगम तत्त्व हार्दं इति मुक्त्वा साक्षात् परमागमसूत्रान्तर्गत श्रीवज्रस्वामिप्रभृतिदशपूर्वधरादिबहुश्रुतसंविग्न सन्निहितव्याख्यानसमादृत 'हवइ' इति पाठयुत अष्टषष्ठिवर्णप्रमाण परिपूर्णनवकारसूत्रमध्येतव्यम्।

चाहिये। अत वास्तविकताको जानकर और आगममे कदाग्रहके अभिप्रायसे ऐसा लिखा है इस प्रकारके विकल्पको छोड़कर परमागम सूत्रके अन्तर्गत और वज्र स्वामी वगैरह श्रुतधरोंके द्वारा व्याख्यात और 'हवइ' इस पाठसे युक्त ६८ अक्षर प्रमाण पूर्ण नवकार सूत्रका पाठ करना चाहिये।'

इस टीकासे नीचे लिखी बातें स्पष्ट होती हैं–

१–महानिशीथ सूत्रके सिवा अन्य किसी भी उपलब्ध आगम सूत्रमें इस तरह नौ पद वाला नमस्कार मन्त्र नहीं पाया जाता।

२–सर्वत्र पॉच पद वाला नमस्कार मन्त्र ही पाया जाता है।

३–चूंकि अन्य आगम सूत्रमें पॉच पद वाला नमस्कार मन्त्र पाया जाता है अत. विद्वानोंमें पॉच पद और नौ पदको लेकर मतभेद रहा है।

किन्तु 'एसो पचणमुक्कारो' इस पदसे इसे पञ्च नमस्कार बतलाया है तथा महानिशीथ सूत्रमें भी इसे 'पञ्च मङ्गल महाश्रुतस्कन्ध' नामसे ही अभिहित किया है और लिखा है–'इट्ठ देवयाण च नमुक्कारो पंञ्चमङ्गलमेव गोयमा।' अर्थात्–हे गौतम। पच मङ्गल ही इष्ट देवताके नमस्कार रूप है। चूंकि इसमे पाचो परमेष्ठियोंको नमस्कार किया है इससे इसका एक नाम पचपरमेष्ठी मन्त्र भी अनेक ग्रन्थोंमें पाया जाता है। अत पञ्च नमस्कार मन्त्र अथवा पञ्च परमेष्ठी मन्त्र या पचमङ्गल ये ही मूल मन्त्रके प्राचीन नाम प्रतीत होते है। पीछेसे जब उसकी माहात्म्य सूचक चूलिकाको भी मूल मन्त्रके साथ भक्तिवश सम्मिलित कर लिया गया तो उसका नाम नवकार मन्त्र हो गया। इसीसे ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि पच पद नमस्कारसे नव पद नमस्कार एक भिन्न श्रुतस्कन्ध है, जैसा कि अभिधान राजेन्द्रमें (पृ० १८३५) उद्धृत है—

अर्थात्–'आम्नायमे[1] ऐसा प्रसिद्ध है कि पच पदवाला नमस्कार मन्त्र समस्त श्रुतस्कन्धके अभ्यन्तर भूत है और समूल होनेसे नव-पदवाला मन्त्र एक जुदा श्रुतस्कन्ध है। इसकी (पच नमस्कार मन्त्रकी) निर्युक्ति चूर्णि वगैरह पृथक् भी वहुत सी थीं। किन्तु जव काल पाकर उसका नाश हो गया तो पदानुसारी ऋद्धिके धारी वज्र स्वामीने मूलसूत्रमें उस नमस्कार मन्त्रको लिख दिया ऐसा महानिशीथ सूत्रके पाचवें अध्ययनमें लिखा है'।

इस विस्तृत चर्चा ओर उसमें दिये गये प्रमाणोके आधारसे इसी परिणामपर पहुचना पडता है कि—

१–मूल नमस्कार मन्त्र पच[2] पदवाला ही है।

२–उसमें उसकी चूलिकाको सम्मिलित कर लेनेसे नौ पद हो जावे हैं।

३–किन्तु दोनो दो भिन्न श्रुतस्कन्ध हैं और नौ पदवालेसे पाच पदवाला समस्त श्रुतस्कन्धके अभ्यन्तर भूत होनेसे विशिष्ट है।

४–नमस्कार मन्त्र कहनेसे यद्यपि दोनोंका ग्रहण हो सकता है किन्तु उससे केवल पच पदात्मक पच नमस्कार मन्त्र अथवा पच परमेष्ठी मन्त्र ही लेना चाहिये और नवकार मन्त्रसे नौ पदवाला

१–'पञ्चपदनमस्कारश्च सर्वश्रुतस्कन्धाभ्यन्तरभूतो, नवपदश्च समूलत्वात् पृथक् श्रुतस्कन्ध इति प्रसिद्धमाम्नाये। अस्य हि निर्युक्तिचूर्ण्योदय पृथगेव प्रभुता आसीरन्, कालेन तद्व्यवच्छेदे मूलसूत्रमध्ये तल्लेखन कृत पदानुसारिणा वज्रस्वामिनेति महानिशीथपञ्चमाध्ययने व्यवस्थितम्।' प्रति० ॥

२–सिंह तिलक सूरिने 'वर्धमान विद्याकल्प' में लिखा है कि समस्त विद्याओंके प्रारम्भमें पूर्ण पञ्च नमस्कार मन्त्र पढना चाहिये यथा—'सर्वविद्यास्मृतावादौ पूर्णा पच नमस्कृति।' इससे भी स्पष्ट है कि पूरा नमस्कार मन्त्र पाच पदात्मक ही है।

यानी चूलिका सहित पच नमस्कार मन्त्र लेना चाहिये। अत नौ पद वाले मन्त्रका नाम नवकार मन्त्र और पाच पदवाले मन्त्रका नाम नमस्कार मन्त्र या पच नमस्कार मन्त्र अथवा पच परमेष्ठी मन्त्र है। दोनों ही मन्त्र आराध्य हैं।

इस तरह मन्त्रके स्वरूप और प्रसग वश उसके नामकी मीमासा करनेके पश्चात् मन्त्रके आराध्य पचपरमेष्ठीका स्वरूप बतलाया जाता है जिससे उनके स्वरूपको जानकर आराधक उनकी सच्ची उपासना कर सके। किन्तु उससे पहले प्रासगिक चर्चासे सम्बद्ध एक अन्य चर्चा कर लेना आवश्यक है और वह है नमस्कार मन्त्रके पदोंके क्रमके बारेमें। अर्थात् नमस्कार मन्त्रके पद जिस क्रमसे रक्खे गये हैं वह क्रम क्या उचित है और यदि उचित है तो क्यों ?

नमस्कार मन्त्रके पदोंके क्रमपर प्रकाश—

नमस्कार मन्त्रके क्रमके बारेमें श्वे० आवश्यक निर्युक्तिमे आक्षेप करते हुए एक आक्षेपकर्ता कहता है कि सूत्र या तो सक्षिप्त होता है या विस्तृत। संक्षिप्त जैसे सामायिक सूत्र, विस्तृत जैसे चौदह पूर्व। किन्तु यह नमस्कार सूत्र तो न तो सक्षिप्त ही है और न विस्तृत ही है। यदि यह सक्षिप्त होता तो उसमे सिद्ध और साधु इन दोको ही नमस्कार किया जाना चाहिये था, क्योंकि जो मुक्ततुल्य अरिहत वगैरह है उनका ग्रहण सिद्ध शब्दसे हो जाता और संसारियोंका ग्रहण साधु शब्दसे हो जाता। यदि कहा जाय कि यह विस्तृत है तो भी ठीक नहीं है क्योंकि विस्तृत नमस्कार तो अनेक प्रकारका हो सकता है। अत यह पचनमस्कार युक्त नहीं है। गाथा इस प्रकार है—

णवि संखेओ न वित्थारो संखेवो दुविहो सिद्धसाहूणं।
वित्थरओऽणेगविहो, पंचविहो न जुज्जइ तम्हा॥ १०१६॥

वगैरह तो नियमसे साधु होते हैं, क्योंकि उनमें साधुके गुण भी पाये जाते हैं। किन्तु जो साधु होते हैं वे सभी अरिहंत वगैरह नहीं होते। इनमेंसे कुछ अरिहंत ही होते हैं, कुछ आचार्य होते हैं, कुछ उपाध्याय होते हैं और कुछ इन सबसे भिन्न केवल साधु ही होते हैं। अतः अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन सबको एक 'साधु' नाममें नहीं कहा जा सकता। इसीसे साधुको नमस्कार करनेसे अरिहंत वगैरहको नमस्कार करनेका फल नहीं मिल सकता, क्योंकि 'साधु' पद ही सामान्य है। जैसे मनुष्य मात्र कहना और मनुष्योंको नमस्कार करनेसे अरिहंत वगैरहको नमस्कार करनेका फल नहीं मिलता, वैसे ही साधुमात्रको नमस्कार करनेसे भी अरिहंत आदिको नमस्कार करनेका फल नहीं मिलता। अतः नमस्कार पाठ सकारण ही है।

पुनः आक्षेपक आपत्ति करता है कि क्रम दो प्रकारका होता है—पूर्वानुपूर्वी क्रम दूसरा पश्चानुपूर्वी क्रम। इनके सिवा और कोई क्रम नहीं होता है। नमस्कार मन्त्रमें जो क्रम रखा गया है वह पूर्वानुपूर्वी क्रम नहीं है, क्योंकि सिद्धोंको पहले नमस्कार नहीं किया है जब कि पांचों परमेष्ठियोंमें सर्वथा उत्कृष्ट होनेके कारण सिद्ध ही प्रधान हैं और प्रधान ही पूज्य होता है। अतः सिद्धोंको पहले रखा जाना चाहिये था। इसलिए यह पूर्वानुपूर्वी क्रम तो नहीं। और पश्चानुपूर्वी क्रम भी नहीं है, क्योंकि पांचों परमेष्ठियोंमें सबसे पीछे साधु आते हैं। अतः यदि साधुको पहले रखकर अन्तमें सिद्धोंको रखा जाये तो पश्चानुपूर्वी क्रम

समाधान—नमस्कार मन्त्रमें पश्चानुपूर्वी ही क्रम है क्योंकि अरिहतके उपदेशसे ही सिद्धोंका ज्ञान होता है, वैसे तो सिद्ध अत्यन्त परोक्ष हैं अत अरिहतोंको ही पहले रखना ठीक है।

आक्षेप—यदि इसलिए अरिहतोंको पहले रखा गया है तो आचार्यको पहले रखना ठीक होगा क्योंकि आचार्य वगैरहके उपदेशसे हम अरिहतोंको जानते हैं।

समाधान—यद्यपि आचार्य वगैरह भी अरिहतोंके विषयमे उपदेश देते हैं किन्तु आद्य उपदेशदाता तो अरिहत ही हैं, आचार्य वगैरह तो उसीको दुहराते हैं अत वे अनुभापक हैं, अरिहतकी तरह स्वतत्र उपदेष्टा नहीं हैं। अत अरिहतको ही पहले नमस्कार किया गया है।

आक्षेप--सिद्ध तो तीर्थंकरोंके भी पूज्य होते हैं क्योंकि जब तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं तो सिद्धोंको नमस्कार करके ही सामायिक करते हैं।

समाधान—जब तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं उस समय वे छद्मस्थ होते हैं अरिहत न ीं होते। अत छद्मस्थ अवस्थामे तीर्थंकर भी सिद्धको नमस्कार करते हैं तो करे, उससे कोई आपत्ति नहीं आती, क्योंकि नमस्कार मन्त्रमे जो पहले अरिहतोंको नमस्कार किया है सो अरिहतसे मतलब छद्मस्थ तीर्थंकरोंसे नहीं है किन्तु जिनको केवलज्ञान हो गया है उन अरिहतोंसे है। और सिद्ध आदिका स्वरूप बतलानेके कारण वे केवली अरिहत सिद्धोंसे विशिष्ट हैं अत नमस्कार मत्रमे अरिहतका प्रथम नमस्कार किया गया है।

धवला[१] टीकामें भी षट्खण्डागमके प्रारम्भमे मगल रूपसे निबद्ध नमस्कार मत्रका व्याख्यान करते हुए क्रमकी चर्चा उठायी गयी है जो इस प्रकार है—

१ प्र० पु०, पृ० ५२।

आक्षेप—अरिहंतों और सिद्धोंने आत्मस्वरूपको प्राप्त कर लिया है, अतः उन्हें नमस्कार करना तो उचित है, किन्तु आचार्य वगैरहने तो आत्मस्वरूपको प्राप्त नहीं किया अतः उन्हें नमस्कार करना उचित नहीं है क्योंकि उनमें देवपना नहीं है ?

समाधान—यह आक्षेप उचित नहीं है, क्योंकि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रयको ही देव कहते हैं और रत्नत्रयके अनन्त भेद हैं। अत जो जीव रत्नत्रयसे विशिष्ट है वही देव है। इसीसे आचार्य वगैरह भी देव ही हैं क्यों कि उनमें रत्नत्रय पाया जाता है। शायद कहा जाय कि सिद्धोंके रत्नत्रयसे आचार्य आदिका रत्नत्रय जुदा है सो भी बात नहीं है। यदि उससे इसको भिन्न माना जायगा तो आचार्य आदिमें पाये जाने वाले रत्नत्रयका अभाव हो जायगा अर्थात् वह रत्नत्रय ही नहीं कहा जायगा। शायद कहा जाये कि सिद्धो और आचार्य आदिके रत्नत्रयमे कारण कार्यका भेद है, अर्थात् सिद्धोंका रत्नत्रय आचार्य आदिके रत्नत्रयका कारण है, सो भी ठीक नहीं है; क्योंकि कर्म-पटलके हटने पर आचार्य आदिमें रत्नत्रय स्वयं ही प्रकट होता है। शायद कहा जाये कि सम्पूर्ण रत्नत्रय जिसमें पाये जायें वही देव होता है जिनमे उनका एक देश रहता है वे देव नहीं कहे जा सकते। किन्तु ऐसा कहना भी उचित नहीं है क्योंकि यदि एक देश रत्नत्रयके धारी देव नहीं हैं तो समस्त रत्नत्रयके धारियोंको भी देव नहीं कहा जा सकता। शायद कहा जाये कि आचार्य आदिमें जो रत्नत्रय है उससे सब कर्मोंका क्षय नहीं हो सकता क्यों कि वह एक देश है, सो भी कहना ठीक नहीं है क्यो कि पयालके ढेरको जलाकर राख कर देना अग्नि समूहका कार्य है किन्तु अग्निका एक कण भी उस कार्यको कर देता है। अत आचार्य वगैरह भी देव हैं, यह बात निश्चित हो जाती है।

आक्षेप—समस्त कर्मोंसे रहित सिद्धोंके होते हुए अघाति कर्मसे युक्त अरिहंतको पहले नमस्कार कैसे किया ?

समाधान—सबसे अधिक गुणवाले सिद्धोंमे जो सबसे अधिक श्रद्धा हम लोगोंकी है उसके कारण अरिहंत ही हैं। यदि अरिहंत न होते तो हम लोगोको सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सत्यपदार्थोंका ज्ञान नहीं होता। अरिहंतके प्रसादसे ही हमें यह ज्ञान प्राप्त हुआ है इसलिए उनके उपकारके कारण भी आदिमे अरिहंतोको नमस्कार किया है क्योंकि इस प्रकारका पक्षपात बुरा नहीं है बल्कि शुभ पक्षमें रहनेसे वह कल्याणका ही कारण है।

अथवा आप्तकी श्रद्धासे ही आप्त, आगम और पदार्थोंके विषय मे दृढ श्रद्धा उत्पन्न होती है यह बतलानेके लिए भी अरिहंतोंको आदिमें नमस्कार किया है। क्योंकि कहा है—'जिसके समीप धर्म ज्ञान प्राप्त करे उसके समीप विनय युक्त हो प्रवृत्ति करे। तथा उसको सदा मन वचन और कायसे वा पञ्चाङ्गसे नमस्कार करे।

इस तरह श्वेताम्बर और दिगम्बर आगमोंमे नमस्कार मन्त्रके क्रमके विषयमे ऊहापोह करके उसे उचित और सयुक्तिक ठहराया गया है। ।

अब नमस्कार मत्रका अर्थ बतलाते हुए मत्रमे नमस्कार किये गये पच परमेष्ठियोंका स्वरूप बतलाया जाता है, क्योंकि उसके विना आराधक अपने आराध्योंका समुचित ध्यान नहीं कर सकता।

नमस्कार मत्रका अर्थ—

अरिहंतोंको नमस्कार, सिद्धको नमस्कार, आचार्योंको नमस्कार, उपाध्यायोंको नमस्कार लोकके सब साधुओंको नमस्कार। यह नमस्कार मन्त्रका शब्दार्थ है।

इस सम्बन्धमे धवला टीकामे इतना विशेष बतलाया है कि

'णमो लोये सव्व साहूण' इस अन्तिम पदमें जो 'लोक' और 'सर्व' शब्द आये हैं वे अन्त दीपक है। अत उनकी अनुवृत्ति पहलेके शेष चार पदोंमें कर लेनी चाहिये, जिसका उद्देश्य सम्पूर्ण क्षेत्रोंके त्रिकालवर्ती सब अरिहंत आदिको नमस्कार करना है। अर्थात् लोकके सब अरिहंतोंको नमस्कार हो, लोकके सब सिद्धोंको नमस्कार हो, इसी तरह पाचों पदोंका अर्थ जानना चाहिये।

यह तो केवल शब्दार्थ है, पूरा अर्थ जाननेके लिए तो अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और साधुका स्वरूप जानना आवश्यक है। अत क्रमसे उनका स्वरूप बतलाया जाता है।

अरिहंतका स्वरूप–

श्वे० आवश्यक निर्युक्तिकारने 'अरिहंत' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है–

१–पाचों इन्द्रियोंके विषय, क्रोध मान माया और लोभ ये कषाय, बाईस प्रकारकी परीषह, शारीरिक मानसिक और दोनो रूप वेदना–तकलीफ-कष्ट, और उपसर्ग ये सब जीवनके शत्रु है। इन 'अरि' यानी शत्रुओंके जो हन्ता नाशक हैं वे अरिहंत[1] कहे जाते हैं।

२–आठ प्रकारका कर्म सब जीवोंका शत्रु है। उन कर्म रूपी अरिका जो हंता-अर्थात् नाशक है वह अरिहंत[2] है।

३–जो वन्दना और नमस्कारके तथा पूजा सत्कारके योग्य हैं और मोक्ष प्राप्त करनेके योग्य हैं उन्हें अरिहंत[3] कहते हैं।

१–इन्दियविसयकसाये परीसहे वेयणा उवसग्गो।
ए ए अरिणो हन्ता अरिहंता तेण वुच्चति ॥ ९१९ ॥

२–'अट्ठविह विअ कम्म अरिभूअ होइ सव्वजीवाण।
त कम्ममरिहंता अरिहंता तेण वुच्चंति ॥ ९२० ॥'

३–'अरिहति वदणनमसणाणि अरिहति पूअसक्कारे।
सिद्धिगमण च अरिहा अरहता तेण वुच्चति ॥ ९२१ ॥'

होते रहते है। यह चक्र अभव्य जीवोंके अनादि अनन्त है और भव्य जीवोंके अनादि सान्त हैं।

आशय यह है कि प्राय सभी धर्म वाले यह मानते है कि प्राणी जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। जैनधर्म मानता है कि यह लोक २३ प्रकारकी पुद्गल वर्गणाओंसे भरा हुआ है। उन वर्गणाओंमें एक कार्मण वर्गणा भी है। जीवके अच्छे बुरे भावोंका निमित्त पाकर यह कार्मण वर्गणा कर्म रूप हो जाती है और जीवके साथ बंध जाती है। जैसा कि लिखा है—

"जब राग-द्वेषसे युक्त आत्मा अच्छे या बुरे कामोंमें लगता है तो कर्म रूपी रज ज्ञानावरणादि रूपसे उसमे प्रवेश करता है[१]"

जैन दर्शनमें जीवमें एक 'योग' नामकी शक्ति मानी गयी है। मन, वचन और कायका निमित्त पाकर यह शक्ति ही कर्मोंके लानेमें कारण होती है। हम जो कुछ सोचते हैं या बोलते हैं अथवा करते हैं उससे आत्माके प्रदेशोंमें एक प्रकारका कम्पन होता है। और उसके होनेसे कर्मपरमाणु हमारी ओर आकृष्ट होते हैं। तथा हमारे राग द्वेष मोह आदि भावोंका, जिन्हें जैनधर्ममें कषाय कहते हैं, निमित्त पाकर हमारी आत्मासे बंध जाते हैं। इन कर्म परमाणुओंको जीव तक लानेका काम जीवकी योग शक्ति करती है और उसके साथ बन्ध करानेका काम कषाय करती है। जब कोई जीव राग द्वेषसे रहित हो जाता है तो योगके रहने तक उसमें कर्म परमाणुओंका आगमन तो होता है किन्तु कषायके न

१—'परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोसजुदो।
त पविसदि कम्मरय णाणावरणादिभावेहिं ॥ ९५ ॥'
—प्रवचन०

होनेसे वे कर्म आत्माके साथ ठहरते नहीं हैं, पहले समयमें आते हैं और दूसरे समयमें चले जाते हैं। समझनेके लिए योगको वायुकी, कषायको गोंदकी, जीवको एक दीवारकी और कर्म परमाणुओंको धूलकी उपमा दी जा सकती है। वायु जितनी तेज या मन्द होती है धूलि भी उतनी ही अधिक या कम उड़ती है। तथा यदि दीवारपर गोंद लगी हो तो वायुके साथ उड़कर आनेवाली धूल दीवारपर चिपक जाती है। किन्तु यदि दीवार सूखी, चिकनी और साफ होती है तो धूलि दीवारपर न चिपककर तुरत झड़ जाती है। अत जैसे धूलका कम या अधिक परिमाणमें उड़कर आना हवाके वेगपर निर्भर है वैसे ही दीवारपर धूलिका थोड़े या अधिक दिनों तक चिपका रहना उसपर लगे गोंद या गीली वस्तुओंकी चिपकाहटपर निर्भर है। यदि दीवारपर पानी पडा हो तो उसपर लगी हुई धूल पानीके सूखते ही झड़ जाती है, यदि किसी पेड़का दूध लगा हो तो कुछ दिनोंमे झड़ती है और यदि गोंद लगा हो तो बहुत दिनोंमें झडती है। यही बात योग और कषायके सम्बधमें जाननी चाहिये। यदि योग उत्कृष्ट होता है तो कर्म परमाणु भी अधिक परिमाणमें आकृष्ट होते हैं और यदि योग जघन्य होता है तो कर्म परमाणु भी कम परिमाणमें जीवकी ओर आते हैं। इसी तरह यदि कषाय तीव्र होती है तो कर्म परमाणु बहुत दिनों तक जीवके साथ बंधे रहते हैं और फल भी तीव्र देते हैं। यदि कषाय मन्द होती है तो कर्म परमाणु जीवके साथ कम समय तक बंधे रहते हैं और फल भी मामूली देते हैं यह एक साधारण नियम है। वैसे कुछ इसमे अपवाद भी हैं जिनको बतलानेके लिए यहाँ स्थान नहीं है। इस प्रकार जीवके ही योग और कषाय रूप भावोंसे जीवके साथ प्रति समय कर्म पुद्गलोंका बन्ध होता रहता है। और जैसे एक समयमें खाया हुआ भोजन पेटमें जाकर रस रुधिर आदिके रूपमे परिणत हो जाता है वैसे ही एक ही समयमे बंधे

हुए कर्म पुद्गल आठ कर्म रूपमें विभाजित हो जाते हैं। वे आठ कर्म हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। ज्ञानावरण कर्म जीवके ज्ञान गुणको घातता है। उसीके कारण कोई जीव अल्पज्ञानी और कोई विशेष ज्ञानी देखा जाता है। दर्शनावरण कर्म जीवके दर्शन गुणको घातता है। ढाकनेवाली वस्तुको आवरण कहते हैं। चूँकि ये दोनों कर्म जीवके ज्ञान और दर्शन गुणको घातते हैं उन्हें प्रकट नहीं होने देते, अत इन्हें आवरण कहा है।

वेदनीय कर्मके उदयसे जीव सासारिक सुख दुखोंको अनुभव करता है। मोहनीय कर्म जीवको मोहित कर देता है। इसके दो भेद हैं—एक दर्शन मोहनीय—यह जीवको सच्चे मार्गकी प्रतीत नहीं होने देता। और दूसरा चरित्र मोहनीय—सच्चे मार्गकी प्रतीत हो जानेपर भी जीवको उसपर चलने नहीं देता। आयु कर्म जीवको अमुक समय तक एक ही भवमें रोक रखता है। इसके समाप्त हो जानेको ही जीवकी मृत्यु कहा जाता है। नाम कर्मके उदयसे जीवका शरीर और अङ्गोपाङ्ग वगैरह बनते हैं। गोत्र कर्मके उदयसे जीव उच्च कुली या नीच कुली कहलाता है। अन्तराय कर्म जीवकी इच्छित वस्तुकी प्राप्तिमें बाधा डालता है।

इन आठ कर्मोंमें से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घाती कर्म कहलाते हैं, क्योंकि ये जीवके स्वाभाविक गुणोंका घात करते हैं। शेष चार कर्म अघाती हैं क्योंकि वे जीवके गुणोंको नहीं घातते। इन आठों कर्मोंके भी १४८ भेद हैं।

इन सब कर्मोंमे प्रधान कर्म मोहनीय है और उस मोहनीयमे भी दर्शन मोहनीय है। जब तक जीवके दर्शनमोहका उदय रहता है उसे अपने हित अहितका ज्ञान नहीं होता। आत्म हितमें उसकी

रूचि ही नहीं होती। भले ही वह शास्त्रोंका पण्डित हो जाय, और सब कुछ छोड कर साधु भी बन जाय किन्तु यदि उसने दर्शन-मोहरूपी ग्रन्थिका भेदन नहीं किया तो सब कुछ करके भी उसने कुछ नहीं किया, इसीसे एक कविने कहा है—

'जिसके हृदय सम्यक्त्व नहीं करनी करी तो क्या करी।'

अत संसारकी जड काटनेके लिए सबसे प्रथम इस दर्शन-मोहको उखाड़ कर फेकना चाहिये। इसके नष्ट होते ही आत्मामें यह दृढ प्रतीति होती है कि—

"एक नित्य निर्मल ज्ञान स्वरूप आत्मा ही मेरी है शेष सब पदार्थ मुझसे भिन्न हैं, वे सदा रहनेवाले नहीं हैं कर्मके उदयसे प्राप्त हुए हैं।"[1] वह सोचता है—

'यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं
तस्यास्ति किं पुत्र कलत्र मित्रैः।
पृथक् कृते चर्मणि रोम कूपाः
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये॥'

अर्थात् जिस आत्माका शरीरके साथ भी ऐक्य नहीं है, अर्थात् जो आत्मा अपने शरीरसे भी भिन्न है उसका पुत्र मित्र और पत्नीसे कैसा सम्बन्ध? यदि शरीरसे चमड़ा अलग कर दिया जाय तो शरीरमें रोम कूप कैसे रह सकते हैं? अर्थात् जैसे रोम कूप-छिद्र चमड़ेमें होते हैं। यदि चमडेको शरीरपर से उतार दिया जाय तो शरीरमें रोम कूप कैसे रह सकते हैं वैसे ही पुत्रादिकका सम्बन्ध

१—'एक. सदा शाश्वतिको ममात्मा
विनिर्मलः साधिगम स्वभावः।
बहिर्भवा सन्त्यपरे समस्ता
न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः॥'

इस शरीरके साथ है। किन्तु जब शरीर ही अपना नहीं तो पुत्रादि अपने कैसे हो सकते हैं? 'अत यह आत्मा इस संसार रूपी वनमें इस संयोगके कारण ही अनेक प्रकारका दुःख भोगता है, अत: जो आत्म-हितकारी मोक्षको प्राप्त करना चाहता है उसे मन वचन और कायसे इस संयोगको छोड़ना चाहिये।२४'

इस तरह आत्मामें भेद विज्ञानके जगते ही प्राणीका सन्तप्त चित्त चन्दनकी तरह शीतल हो जाता है और वह मोक्षके मार्गपर चलनेके लिए उत्सुक हो उठता है। उसे खाते पीते चलते फिरते और सोते जागते एक ही धुन रहती है कैसे शिव-नारीका वरण करूं। अब उसका मन किसी सांसारिक कार्यमें नहीं लगता। गृहस्थीमें रहते हुए भी वह ऐसे रहता है जैसे पानीमें कमल। उसकी यह वृत्ति दिनपर दिन बढ़ती जाती है और एक दिन ऐसा आता है कि वह सब परिग्रहोंको छोड़कर आत्म विभोर हो मोक्षकी साधनाके लिए निकल पड़ता है। अब उसके लिए शहर और जंगल, कुटुम्बी और पराये, महल और श्मशान, कोमल शय्या और पत्थरकी शिला सब समान हो जाते हैं। उसे बाह्य शत्रुओंकी चिन्ता नहीं है, अब वह अपनी आत्मामें बैठे हुए कर्म शत्रुओंको ही अपना वास्तविक शत्रु समझता है और उत्तम क्षमासे क्रोधपर उत्तम मार्दवसे मानपर, उत्तम आर्जवसे मायापर और उत्तम शौचसे लोभपर विजय प्राप्त करके धीरे धीरे दर्शन मोहके साथ चारित्र मोहको भी नष्ट कर डालनेका प्रयत्न करता है। जहां इसमें बल-वती आत्मकल्याणकी भावना है वहीं यह सांसारिक दु:खोंसे पीड़ित

और अज्ञान रूपी अन्धकारमें पड़े हुए प्राणियोंके उद्धारके लिए भी उत्सुक रहता है। उसके चित्तमें रह रह कर यह भावना उठती है कि कैसे इन प्राणियोंका उद्धार हो। इस महती लोक कल्याणकी भावनासे वह तीर्थङ्कर नाम कर्मका बन्ध करता है और आयु पूरी होनेपर स्वर्गलोकमें महर्द्धिक देव होता है वहां भोगोपभोगके अनेक साधन रहनेपर भी उसका अधिक समय देव पूजा, जिनालयोंकी वन्दना, धार्मिक महोत्सवोंका अवलोकन और धर्म श्रवणमें ही बीतता है। सभी देव उसका आदर करते हैं। जब उसकी आयु छह मासकी शेष रह जाती है तो मनुष्य लोकमें जहाँ वह जन्म लेनेवाला होता है, अनेक मांगलिक कृत्य होने लगते हैं। उसके माता पिताकी सेवाके लिए इन्द्रके आदेशसे देव देवांगनाएँ सदा तत्पर रहती हैं। छह माह पूरे होनेपर एक दिन माताको रात्रिके पिछले प्रहरमें शुभ सूचक स्वप्न दिखायी देते हैं और वह देव स्वर्गसे चलकर माताके गर्भमें आ जाता है। नव मास पूर्ण होनेपर बालकका जन्म होता है। उस समय तीनों लोकोंमें आनन्द छा जाता है। सदाके दुखी नारकियोंको भी क्षण भरके लिए साता मिल जाती है। इन्द्रका आसन डोल उठता है। तब इन्द्र अवधिज्ञानसे तीनों लोकोंके स्वामी जगद् गुरु तीर्थङ्करका जन्म हुआ जानकर तुरत आसनसे उठकर और सात-आठ पग चलकर जिस दिशामें तीर्थङ्कर होते हैं उस दिशामें नमस्कार करता है और बड़ी विभूतिके साथ मनुष्य लोकमें आकर भगवान् तीर्थङ्करका जन्म कल्याणक मनाता है।

बालक धीरे-धीरे बढ़ कर युवा हो जाता है। जन्मसे ही तीन ज्ञानका धारी होनेके कारण सब विद्याएं उसे अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी शंकाएं उसे देखते ही शान्त हो जाती हैं। युवा देखकर मोही माता पिता उसे विवाह-बन्धनमें

साधना चाहते हैं, किन्तु उसके चित्तमें तो स्व-पर कल्याणकी भावना जागृत रहती है। अतः वह इस व्यामोहमें न पड़ कर, और यदि माता-पिताका आग्रह हुआ तो इस कर्त्तव्यको भी पूरा करके सब विभूतिको छोड़कर जगत्‌के उद्धारके लिए एकाकी प्रव्रजित होता है।

भगवान्‌के प्रव्रजित होनेकी बात ज्ञात होते ही सबसे प्रथम लौकान्तिक देव आते हैं और इस शुभ विचारका अभिनन्दन करके चले जाते हैं। इसके बाद इन्द्र देव परिवारके साथ पधारते हैं। और भगवान्‌को शिविकामें बैठा कर वनकी ओर ले जाते हैं। वहाँ भगवान् सब परिग्रहका त्याग करके केशलौंच करते हैं और आत्मध्यानमें लीन हो जाते हैं। न वे किसीसे बोलते हैं और न किसीको कुछ उपदेश देते हैं। केवल आत्मसाधनामें मग्न रहते हैं। वर्षोंकी कठोर साधनाके पश्चात् एक दिन ऐसा आता है कि दर्शन मोहका सहोदर भाई चारित्रमोह कर्म भी समूल नष्ट हो जाता है।

देव, मनुष्य, पशु पक्षी सभी पहुँचते हैं और आपसका वैर विरोध भूलकर अपनी-अपनी बोलीमें भगवानका उपदेश सुनते हैं। जहाँ जहाँ भगवानका विहार होता है वहाँ वहाँ ऐसी ही सभाका आयोजन होता है। ये भगवान ही अरिहंत परमेष्ठी होते हैं।

अरिहंत परमेष्ठीके ४६ गुण बतलाये हैं—आठ प्रातिहार्य ४ अनन्त चतुष्टय और ३४ अतिशय।

जब अरिहंतदेव समवसरणमें विराजते हैं तो इनके नीचे एक १—रत्नमय सिंहासन रहता है २—पीछे अशोकवृक्ष रहता है, ३—पीठके पीछे भामण्डल होता है ४—सिरपर तीन छत्र होते हैं ५—दोनों ओर खड़े होकर यक्ष चौसठ चमर ढोरते हैं ६—चारों ओर फूलोंकी वर्षा होती है ७—इनकी वाणी एक योजन तक सुनाई पड़ती है और ८—आकाशमें बाजे बजते रहते हैं। ये आठ प्रातिहार्य हैं।

अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यके वे स्वामी होते हैं। ये चार अनन्त चतुष्टय हैं। ३४ अतिशयोंके विषयमें मतभेद है। दिगम्बर १० अतिशय जन्मसे मानते हैं, दस केवल ज्ञानके प्रभावसे मानते हैं और १४ देवकृत मानते हैं। श्वेताम्बरोंमें ४ अतिशय जन्मसे माने जाते हैं; शेषमें से एक मतानुसार १५ अतिशय केवलज्ञान कृत तथा १५ देवकृत होते हैं, दूसरे मतसे ११ अतिशय केवलज्ञान कृत और १९ अतिशय देवकृत होते हैं।

अरिहंत भगवानका शरीर जन्मसे ही बड़ा सुन्दर होता है (१) उसमें से बड़ी अच्छी सुगन्धि आती है (२) उसमें पसीना नहीं आता (३) मलमूत्र भी नहीं होता (४) शरीरमें अतुल्य बल होता है (५) रक्त दूधके समान सफेद होता है (६) वे सबसे मीठे वचन बोलते हैं (७) शरीर सुडौल होता है (८) शरीरके हाड़ वगैरह वज्रके समान होते हैं (९) शरीरमें १००८ लक्षण होते हैं ये दश

अतिशय जन्मसे ही होते हैं। जब उन्हें केवलज्ञान हो जाता है तो उस नगरमें जहां भगवान होते हैं उस स्थानसे चारों ओर सौ, सौ योजन तक सुकाल रहता है (१) भगवान पृथ्वीपर न चलकर आकाशमें गमन करते हैं (२) देखनेवालोंको चारों तरफ उनका मुख दिखलायी देता है (३) उनपर कोई उपसर्ग नहीं कर सकता (४) उनके शरीरसे किसी भी जीवका घात नहीं होता (५) वे आहार नहीं करते (६) उनकी पलकें नहीं झपकतीं (७) उनके बाल और नाखून नहीं बढ़ते हैं (८) शरीरकी परछाईं नहीं पड़ती (९) वे समस्त विद्या और शास्त्रोंके ज्ञाता होते हैं (१०) ये दस अतिशय केवल-ज्ञान होने पर प्रकट होते हैं।

भगवान अर्धमागधी भाषामें अपना उपदेश देते हैं (१) समस्त जीव मित्रता पूर्वक समवसरणमें बैठते हैं (२) दिशाएँ निर्मल रहती हैं (३) आकाश निर्मल रहता है (४) सब ऋतुके फलफूल और धान्य एक साथ फलते हैं (५) एक योजन तक पृथ्वी दर्पणकी तरह निर्मल रहती है (६) जब भगवान चलते हैं तो उनके चरणोंके नीचे स्वर्ण कमल बन जाते हैं (७) आकाशमें जय जय होता हो (८) मन्द मन्द सुगन्धित वायु बहती है (९) सुगन्धित जलकी बूंदे टपकती रहती हैं (१०) भूमि कण्टक रहित होती है (११) समस्त प्राणी प्रसन्न रहते हैं (१२) भगवानके चलते समय उनके आगे धर्मचक्र चलता है (१३) तथा छत्र, चमर, ध्वजा, घटा वगैरह अष्ट मगल द्रव्य साथ रहते हैं (१४) ये १४ अतिशय देव करते हैं। इस प्रकार दिगम्बरोंकी मान्यतानुसार ३४ अतिशय होते हैं।

श्वेताम्बरों की मान्यताके अनुसार इस प्रकार ३४ अतिशय कहे हैं—अरहत भगवानका शरीर अद्भुत रूपवाला, सुगन्ध युक्त, नीरोग और पसीनेसे रहित होता है (१) श्वास कमलकी तरह

सुगन्धित होता है (२) रुधिर और मांस दूधकी तरह सफेद रहता है (३) आहार और नीहार अदृश्य होते हैं (४) ये चार अतिशय जन्मसे ही होते हैं।

समवसरणकी भूमिमें मनुष्य देव और पशु पक्षी सब आरामसे बैठते हैं (१) उनकी अर्धमागधी भाषा उपस्थित सब श्रोताओंकी भाषामें बदल जाती है अर्थात् भगवान अर्धमागधीमें उपदेश देते हैं और सब श्रोता अपनी बोलीमें उसे सुन लेते हैं (२) सिरके पीछे सूर्यको भी तिरस्कृत करने वाला भामण्डल होता है (३) जहाँ भगवान होते हैं वहाँसे १०० योजन तक कोई रोग नहीं रहता (४) कोई वैर विरोध नहीं होता (५) ईति—धान्य वगैरहको हानि पहुँचाने वाले जीव जन्तुओंका उपद्रव नहीं रहता (६) मारी नहीं रहती (७) अतिवृष्टि नहीं होती (८) अवृष्टि नहीं होती (९) दुर्भिक्ष नहीं पड़ता (१०) तथा स्वराष्ट्र और परराष्ट्रका भय नहीं रहता (११) ये ११ अतिशय घातिकर्मोंके क्षय हो जानेसे प्रकट होते हैं। आकाशमें धर्मका प्रकाश करने वाला धर्मचक्र होता है (१) चमर ढोरे जाते हैं (२) निर्मल सिंहासन होता है (३) तीन छत्र होते हैं (४) रत्नमयी ध्वजा होती है (५) पैर रखनेके लिए स्वर्णकमल होते हैं (६) समवसरणमें रत्नमयी, स्वर्णमयी और रजतमयी तीन प्राकार होते हैं (७) चारों ओर भगवानका मुख दिखलायी देता है (८) अशोक वृक्ष होता है (९) कांटे नहीं लगते उनका मुख नीचेकी ओर हो जाता है (१०) वृक्ष नम्र हो जाते हैं (११) आकाशमें दुन्दुभीका शब्द होता है (१२) वायु सुगन्ध बहती है (१३) पक्षी प्रदक्षिणा पूर्वक गमन करते हैं (१४) गन्धोदककी वर्षा होती है (१५) पाँच वर्णके फूलोंकी जंघातक ऊँची वर्षा होती है (१६) भगवानके नख केश नहीं बढ़ते (१७) भगवानके समीपमें चारों निकायोंके कम से कम एक कोटि देवता रहते हैं (१८) सब ऋतुओंके फल फूल

फलते हैं (१९) इस तरह ३४ अतिशय भगवान्‌के होते हैं। उनकी वाणीके भी ३५ अतिशय बतलाये हैं।

साराश यह है कि जो चार घातिकर्मोंको नष्ट कर देता है, और घाति कर्मोंके नष्ट हो जानेसे जो स्वाभाविक शुद्ध अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यसे युक्त है, तथा सात धातुओंसे रहित परम औदारिक शरीरमे विराजमान है, १८ दोषोंसे[1] रहित है उस शुद्ध आत्माको अरिहंत कहते हैं। उसका सदा ध्यान करना चाहिये। जैसा कि कहा है—

णट्ठ चदु घाइकम्मो दंसणसुह णाण वीरियमइयो।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो॥ ५०॥

—द्रव्यसंग्रह

इन अरिहंत भगवान्‌के अनेक नाम हैं। ये परमपदमे विराजमान होते हैं इस लिए इन्हें परमेष्ठी कहते है। इनका ज्ञान निरावरण और सर्वोत्कृष्ट होता है अत. इन्हें परमज्योति कहते हैं। रागसे रहित होनेके कारण विराग कहते हैं। कर्म बन्धनसे रहित होनेके कारण 'विमल' कहते हैं। चूंकि वे अपने जीवनका अन्तिम लक्ष्य प्राप्त कर चुके हैं और उन्हें कुछ करना शेष नहीं है, इस लिए 'कृती' कहे जाते हैं। समस्त पदार्थोंको जाननेके कारण 'सर्वज्ञ'

---

[1]—दिगम्बर और श्वेताम्बर आम्नायमें १८ दोषोंके सम्बन्धमें भी मत भेद है। श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार अज्ञान, मद, क्रोध, मान, माया, लोभ, रति, अरति, निद्रा, शोक, असत्य, चोरी, मात्सर्य, भय, हिंसा राग-क्रीडा और हास्य ये १८ दोष हैं, और दिगम्बर मान्यताके अनुसार भूख, प्यास, भय, द्वेष, राग, मोह, चिन्ता, बुढापा, रोग, मृत्यु, खेद, स्वेद, मद, अरति, आश्चर्य, जन्म, निद्रा और विषाद—ये १८ दोष हैं, जो अरहंतोंमे नही होते हैं।

कहे जाते हैं। सबके हितकर्ता होनेसे 'सार्व' कहे जाते हैं। और पूर्वापर विरोधसे रहित वस्तु स्वरूपका यथार्थ कथन करनेके कारण 'शास्ता' कहलाते हैं। जो मनुष्य भाव पूर्वक इन अरिहन्त भगवानको नमस्कार करता है वह भवबन्धनसे छूट जाता है।

सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप—

भव परम्परासे चले आये हुए आठों कर्मोंको सम्यग्ज्ञानादि अनेक उपायोंके द्वारा कृश करते-करते जो उनको शीघ्र ध्यान रूपी अग्निके द्वारा उसी प्रकार जला डालता है जैसे स्वर्णकार स्वर्णके मैलको, उसे सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है—

चार घाति कर्मोंको नष्ट करके जब कोई आत्मा अरहन्त हो जाता है तो वह निरीह भावसे सर्वत्र विहार करके जीवोंको कल्याण मार्गका उपदेश देता रहता है। अब उसके केवल ४ अघाति कर्म शेष रह जाते हैं। और उनको वह एक साथ ही नष्ट करता है।

(अब प्रश्न यह होता है कि यदि बाकी बचे चारों कर्मोंकी स्थिति समान हो तो चारों कर्मोंका नाश एक साथ हो सकता है, किन्तु यदि उनकी स्थिति विषम हुई तो चारोंका नाश एक साथ कैसे हो सकता है? अर्थात् यदि आयु कर्मकी स्थिति थोड़ी हुई और शेष तीन कर्मोंकी स्थिति अधिक हुई तो आयु कर्म पहले नष्ट हो जायगा और उस स्थितिमें शेष कर्म बाकी रह जायेंगे। तब वह मुक्त कैसे कहलायेगा?

इसका समाधान यह है कि जिस अरहन्तके चारों कर्मोंकी स्थिति समान होती है वह तो बिना ही समुद्घात किये चारों कर्मोंको एक साथ नष्ट करके सिद्ध हो जाता है। किन्तु जिसकी आयु थोड़ी होती है और शेष तीन कर्मोंकी स्थिति अधिक होती

है वह समुद्घातके द्वारा उनकी स्थितिको आयु कर्मकी स्थितिके समान कर लेता है।)

आशय यह है कि जब एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु शेष रह जाती है तब केवली समुद्घात करते हैं। समुद्घातके लिए वे सबसे प्रथम समयमें आत्म प्रदेशोंको दण्डके आकारमें लोकके एक छोरसे दूसरे छोर तक फैलाते हैं। दूसरे समयमें पूर्व और पश्चिममें लोकान्त तक फैला कर कपाटकी तरह कर देते हैं। तीसरे समयमें उसे ही दक्षिण और उत्तर दिशाकी ओर फैलाकर मथानीके आकार कर देते हैं। ऐसा करनेसे लोकका बहुभाग उनके आत्म प्रदेशोंसे भर जाता है। चौथे समयमें समस्त लोक को पूर कर लोक पूरण कर देते हैं। लोकपूरण होनेके पश्चात ही पांचवें समयमें जीवके प्रदेशोंको संकोचकर मथानी रूप कर देते हैं। छठे समयमें मथानीसे कपाटके रूपमें संकुचित करदेते हैं। सातवें समयमें कपाटसे दण्डके रूपमें संकुचित करदेते हैं और आठवें समयमें दण्डका भी संकोच करके शरीरस्थ होजाते हैं। जैसे गीली साड़ीको तान देनेसे वह जल्दी सूख जाती है वैसे ही समुद्घातके द्वारा जल्द ही विशिष्ट कर्मोंकी स्थितिका समीकरण हो जाता है।

इसके बाद योगका निरोध करते हैं क्यों कि तीनों ही योग बन्धके कारण हैं। योगका निरोध होते ही समस्त कर्मोंका संवर होजानेसे शीलके स्वामी होजाते हो। 'अ इ उ ऋ लृ' इन पांच ह्रस्व अक्षरोंको न तो अति शीघ्रतासे और न अति देरसे उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है उतना ही काल शैलेशी अवस्थाका है। काययोगका निरोध होनेके समयसे लेकर केवली सूक्ष्म-क्रिया-निवृत्ति रूप शुक्ल ध्यानको ध्याते हैं और शैलेशी अवस्थामें समुच्छिन्न क्रिया प्रतिपाति ध्यानको ध्याते हैं। यद्यपि मनोनिरोधका नाम ध्यान है और केवलीके मन नहीं रहता अत वहां ध्यान

शब्दका वास्तविक अर्थ नहीं पाया जाता, फिर भी ध्यानका कार्य-कर्म निर्जरा बराबर होती है अतः ध्यान माना जाता है।

समुच्छिन्न क्रिया-प्रतिपाति ध्यानके द्वारा बाकी बचे चार कर्मोंको समूल नष्ट करके वे सिद्ध हो जाते हैं और सिद्ध होते ही ऊर्ध्व गमन करते हैं। (जैसे तुम्बीके ऊपरसे मिट्टीका भार उतर जानेपर वह स्वभावसे ही ऊपरको जाती है, वैसे ही कर्मोंका भार उतर जानेपर सिद्ध जीव भी ऊपरको ही जाता है। जैसे आतपसे सूखकर बीजकोशके फट जानेसे एरण्डफलके बीज ऊपरको ही जाते हैं वैसे ही कर्म बन्धनके कट जानेसे जीव भी ऊपरको ही जाता है। अथवा जैसे अग्निकी लपट स्वभावसे ऊपरको ही जाती है वैसे ही जीव भी स्वभावसे ही ऊपरको जाता है।)

ऊपर लोकके अग्रभागमें मनुष्य लोकके बराबर परिमाण वाला सिद्ध क्षेत्र है। उसका आकार उत्तान छत्रकी तरह है। (यहाँसे मुक्त होनेके बाद जीव जिस अवस्थामें मुक्त होता है—बैठा हुआ या खड़ा हुआ, वही आकार उसका मुक्त होनेपर रहता है—केवल अवगाहना मूल शरीरसे कुछ कम हो जाती है; क्योंकि शरीरमें कुछ स्थान खाली होता है। जब योग निरोध होता है तो वे खाली भाग भर जानेसे अवगाहना कम हो जाती है।)

हाँ, तो मुक्त होनेके बाद सिद्ध जीव तुरन्त ऊर्ध्व गमन करता है और लोकके अन्त तक जाकर सिद्ध क्षेत्रपर ठहर जाता है; क्योंकि गतिमें सहायक धर्म द्रव्य लोकान्त तक ही पाया जाता है, आगे नहीं पाया जाता है। और उसके बिना जीवका गमन नहीं हो सकता। अतः मुक्तजीव सिद्ध क्षेत्रपर विराजमान हो जाता है। इसी तरह जितने भी जीव मुक्त होते हैं सब ऊर्ध्व गमन करके लोकान्तमें स्थिर होते जाते हैं। चूँकि जीव अमूर्तिक है अतः स्थानके घिरनेका कोई प्रश्न ही नहीं है। इसीसे जहाँ एक सिद्ध

परमेष्ठी विराजमान हैं वहीं अनन्त सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हो सकते हैं और हैं।

वे सिद्ध वहाँसे कभी भी लौट कर नहीं आते, क्योंकि न वहाँ मृत्यु है, न बुढापा है, न सयोग वियोग है और न रोगादिक है। ये सब चीजें शरीरसे सम्बन्ध रखती है और वे मुक्त अशरीरी होते हैं। इसीसे कहा है–

जाइजरामरणभया संजोगविओगदुःखसंरणाओ।
रोगादिगा य जिस्से ण संति सा होदि सिद्धगई ॥१५२॥

–गोम० जीव०

अर्थात् जिसमे जन्म, जरा मरणका भय, सयोग वियोगका दु ख और रोग वगैरह नहीं होवे वह सिद्धगति है।

सक्षेपमे सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप इस प्रकार कहा है–

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्ग णिवासिणो सिद्धा ॥६८॥

–गोम० जीव०

'जो आठ कर्मोंसे रहित हैं, अनन्त सुखमे मग्न हैं, निरजन हैं, नित्य हैं, आठ गुणोंसे सहित हैं, कृतकृत्य हैं और लोकके अग्र-भागमें रहते हैं वे सिद्ध परमेष्ठी हैं।

सिद्धोंके ये सभी विशेषण सार्थक हैं और अन्य मतावलम्बियोने मुक्त जीवका जो स्वरूप माना है उसको दृष्टिमें रख कर ही दिये गये हैं। इनका खुलासा इस प्रकार है—

'सदा शिव'वादी आत्माको सदा कर्मसे रहित मानते हैं— ईश्वरको नित्य मुक्त मानते हैं। किन्तु जैन दर्शनका कहना है—

नास्पृष्टः कर्मभिःशश्वद् विश्वदृश्वाऽस्ति कश्चन ।
तस्यानुपायि सिद्धस्य सर्वथा नुपपत्तितः ॥ ८ ॥
—आप्त परीक्षा

'कोई सर्वद्रष्टा सदासे कर्मोंसे अछूता हो नहीं सकता क्यो कि बिना उपायके उसका सिद्ध होना किसी भी तरह नहीं बनता ।

जितने भी मुक्त जीव हैं वे सब पहलेसे कर्म बद्ध थे । कर्मोंको काट कर ही उन्होने सिद्ध पद प्राप्त किया है । अतः सिद्ध वही है जो आठों कर्मोंसे मुक्त हो चुका है ।

सांख्य वगैरह मुक्तावस्थामें सुख नहीं मानते । किन्तु जैन दर्शनका कहना है कि सच्चा सुख तो मुक्तावस्थामें है, क्यों कि सुख आत्माका गुण है जो संसार अवस्थामें विभाव रूप परिणमन करता है । विभाव अवस्थाके समाप्त होते ही स्वाभाविक सुख प्रकट हो जाता है। संसार अवस्थामे जिसे हम सुख मानते हैं वह सुख नहीं है किन्तु दुःख है क्योंकि—

'सपरं बाधा सहियं विच्छिन्नं बंध कारणं विसमं ।
जं इंदियेहिं लद्धं तं सौक्खं दुक्खमेव तहा ॥'

'जो दूसरेकी सहायतासे होता है, जिसके बीचमें अनेक बाधाएं हैं, जो होकर पुनः नष्ट हो जाता, जिसके भोगनेसे कर्मका बन्धन होता है, जो कभी कम और कभी अधिक होता है तथा जिसे इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त किया जाता है वह सुख, सुख नहीं है बल्कि दुःख ही है ।'

सुख वह है जो बिना बाह्य वस्तुओंके अपने ही अन्दरसे प्राप्त होता है और एक बार प्राप्त होनेपर फिर कभी अस्त नहीं होता । इसीसे कविवर दौलतरामजीने कहा है—

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता विन कहिये ।
आकुलता शिव माहिं न तातें शिव मग लाग्यो चहिये ॥—छहढाला

अर्थात् आत्माका हित सुख है। और सुख उसे कहते हैं जिसमे किसी तरहकी आकुलता न हो। मोक्षमें कोई आकुलता नहीं है अत मोक्षके मार्गमें ही लगना चाहिये, अस्तु

मस्करी नामका दार्शनिक मानता है कि–मुक्त जीव मुक्तिसे पुन लौट आते हैं। किन्तु जैन दर्शन ऐसा नहीं मानता, क्योंकि ससारमें पुनरागमन तभी सभव है जव मुक्तमे कोई विकार शेप रह गया हो जिसके कारण उसे ससारमें आना पड़े। किन्तु यदि कोई विकार शेप रह जाये तो मुक्ति ही नहीं हो सकती अत. मुक्त जीव निरजन निर्विकार होते हैं इसलिए फिर कभी लौटकर नहीं आते।

क्षणिकवादी बौद्ध सवको क्षणिक मानता है। अत कहा है कि मुक्तावस्था क्षणिक नहीं है नित्य है।

(यौग मतावलम्वी मुक्तावस्थामे जीवके सभी विशेप गुणोंका नाश मानते हैं और कहते है कि वुद्धि आदिविशेप गुणोंका नाश हो जाना ही मुक्ति है। किन्तु जैन दर्शनका कहना है कि सिद्धोंमें स्वभाविक आठ गुण सदा वर्तमान रहते हैं। वे गुण हैं–सम्यक्त्व, दर्शन, वीर्य, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व और अव्यावाधत्व। आठों कर्मोंके विनाश होनेसे ये आठों गुण प्रकट होते हैं।

ईश्वरवादी मानते हैं कि ईश्वर नित्य मुक्त हो कर भी सृष्टिकी रचना करता है उसे वनाता विगाडता है, जीवोंको उनके कर्मोंका फल देता है आदि। जैन दर्शनका कहना है कि जो मुक्त हो गया वह तो कृतकृत्य हो गया, उसे कुछ करना शेप नहीं। अत वह न तो किसीको वनाता है न किसीको विगाड़ता है और न किसीको सुख-दुख देता है। यह सृष्टि तो अनादिकालसे ऐसी ही चली आती है क्योंकि सत्का विनाश नहीं होता और असत्की उत्पत्ति नहीं होती। अत वस्तु स्वरूपके अनुसार द्रव्योंमें परिवर्तन हुआ करता है। उसीसे यह सव खेल चलता रहता है।

मण्डली मानता है कि जीव मुक्त हो जानेके बाद सदा ऊपरको गमन करता है वह कभी भी रुक नहीं सकता। किन्तु जैन दर्शनका कहना है कि मुक्त जीव लोकके अग्रभाग तक जा कर रुक जाता है। इस तरह सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप जानना चाहिये। कहा भी है—

णट्ठट्ठकम्म देहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोय सिहरत्थो॥ ५१॥

—द्रव्यसंग्रह

जिन्होंने आठ कर्मोंको और शरीरको नष्ट कर दिया है और जो लोक तथा अलोकके ज्ञाता द्रष्टा हैं, लोकके शिखरपर विराजमान है उस पुरुषाकार आत्माको सिद्ध कहते हैं। उनका ध्यान करना चाहिये।

श्वे० आचारांग सूत्रमें कहा है—

'सव्वे सरा णिअदंति, तक्का जत्थ ण विज्जति, मती तत्थ ण गाहिता, ओए अप्पति ट्ठाणस्स खेयन्ने॥ ३३०॥'

'से ण दीहे, ण ह्रस्से, ण वट्टे, ण तसे, ण चउरंसे, ण परिमंडले, ण किन्हे, ण णीले, ण लोहिए, ण हालिद्दे, ण सुक्किले, ण सुरहिगंधे, ण दुरहिगंधे, ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाते, ण अंबिले, ण महुरे, ण कक्खडे, ण मउए, ण गरुए, ण लघुए, ण सीए, ण उण्हे, ण णिद्दे, ण लुक्खे, ण काउ, ण रुहे, ण संगे, ण इत्थी, ण पुरिसे, ण अन्नहा, परिण्णे, सण्णे॥ ३३१॥

उवमा ण विज्जति, अरुवी सत्ता, अपयस्स पयणत्थि॥ ३३२॥

से ण सद्दे, ण रूवे, ण गंधे, ण रसे, ण फासे इच्चेतावति त्ति बेमि॥ ३३३॥

अर्थ— 'सिद्धकी अवस्था वर्णन करनेके लिए कोई भी शब्द समर्थ नहीं है। तर्कका उसमें प्रवेश नहीं है, मति वहाँ पहुचती नहीं, वहाँ सब कर्मोंसे रहित ज्ञानमय आत्मा ही विराज-

मान है।' मुक्त जीव न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न गोल है, न तिकोना है, न चौकोर है, न मण्डलाकार है, न काला है, न नीला है, न लाल है, न पीला है, न सफेद है, न सुगन्ध वाला है, न दुर्गन्ध वाला है, न तीता है, न कड़ुआ है, न कसैला है, न खट्टा है, न मीठा है, न कठोर है, न सुकुमार है, न भारी है, न हल्का है, न ठंडा है, न गरम है, न स्निग्ध है, न रूक्ष है, न शरीर वाला है, न जन्म लेता है, न परिग्रही है, न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है, केवल ज्ञाता द्रष्टा है,।

'मुक्त जीवकी कोई उपमा भी नहीं है। क्योंकि वह तो अरूपी है। उसकी कोई विशेष अवस्था भी नहीं है इसलिए शब्दसे उसे कहा नहीं जा सकता। केवल इतना ही जानते हैं कि मुक्तजीव न तो शब्द रूप है न रूपमय है न गन्धवाला है न रसवाला है और न स्पर्शवाला है।'

ऐसे सिद्धोंको जो भाव पूर्वक नमस्कार करता है वह भव-बन्धनसे छूट जाता है तथा उसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

आचार्य परमेष्ठीका स्वरूप—

पाँच प्रकारके आचारको जो पालते हैं, उसका व्याख्यान करते हैं वे आचार्य कहलाते हैं। जैसा कि, श्वे० आवश्यक निर्युक्तिमें लिखा है—

पंचविहं आयारं आयरमाणा तहा पयासंता।
आयारं दंसंता आयरिया तेण वुच्चंति ॥ ६६४ ॥

अर्थात्—पाँच प्रकारके आचारका स्वयं आचरण करते हैं। उसका प्रकाश करते हैं इसलिए उन्हें आचार्य कहते हैं।

आवश्यक चूर्णिमें विस्तारसे आचार्यका स्वरूप बतलाया है जिसकी कुछ मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

जो आचारमें कुशल हो, स्व-समय और पर-समयका जानकार हो, चित्तका हल्का न हो, क्षमाशील और जितेन्द्रिय हो, जिसे न जीवनकी तृष्णा हो और न मृत्युका भय हो, परीषहोंका जीतने वाला हो अहंकारसे अछूता हो, सत्कार, लाभ-अलाभ और सुख दुखमें समान हो, अपमानको सह सकने वाला हो, चपल न हो, संक्लिष्ट परिणामी न हो, प्रायश्चित्तमें दक्ष हो, मार्ग और कुमार्गको जानने वाला हो, अनुयोगका जानने वाला हो, नयोंका वेत्ता हो, कमलके पत्रकी तरह निर्लिप्त हो, वायुकी तरह अप्रतिहत गति वाला हो, पर्वतकी तरह निश्चल हो, समुद्रकी तरह गभीर हो, और कछुएकी तरह आत्म संवरण करने वाला हो, चन्द्रमाकी तरह सौम्य हो, सूर्यकी तरह तेजस्वी हो, जलकी तरह सबको शान्ति-दायक हो, आकाशकी तरह अपरिमित ज्ञानी हो, तीन दण्ड, तीन गारव और तीन शल्योंसे रहित हो, तीन गुप्तियोंका पालक हो, चार विकथा और चार कषायोंका त्यागी हो, पाच समिति पाँच महाव्रत और पॉच प्रकारके चारित्रका धारक हो, छह कायोंके जीवों पर दयालु हो, सात प्रकारके भयोंसे मुक्त हो, आठों कर्मोंका भेदन करने वाला हो, नौ प्रकारके ब्रह्मचर्यका पालक हो, श्रमणोंके दश प्रकारके धर्मोंका ज्ञाता हो, बारह प्रकारके तपका आचरण करने वाला हो, द्वादशांग शास्त्रमें पारंगत हो, इत्यादि गुणोंसे जो युक्त हो वह आचार्य होता है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें आचार्यके ३६ गुण माने गये हैं। किन्तु सख्यामें समानता होते हुए भी नामोंमें अन्तर है श्वेताम्बर सम्प्रदायमें—५ महाव्रत, ५ आचार ५ समिति, ३ गुप्ति, पॉचों इन्द्रियोंका जय, नौ वाडसे युक्त विशुद्ध ब्रह्मचर्य और चार कषायोंका त्याग इस तरह ३६ गुण बतलाये हैं।

दिगम्बर सम्प्रदायमें—१२ प्रकारका तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक, ३ गुप्ति इस प्रकार ३६ गुण बतलाये हैं।

यद्यपि दोनो सम्प्रदायोमे आचार्यमे वे सभी गुण माने गये हैं जो एक दूसरेमें गिनाये गये हैं केवल गौणता और मुख्यताकी दृष्टिसे अन्तर पड़ गया है। जो इन गुणोंसे रहित हो वह आचार्य नहीं है।

आचार्य समस्त सघके अग्रणी होते हैं। वे नये साधुओंको दीक्षा देते हैं। अत उनपर बड़ा भारी उत्तरदायित्व होता है। वे आखोंकी तरह गच्छकी रक्षा करते हैं। शिष्योंको विधि पूर्वक उनके कृति कर्मोंमें प्रेरित करते हैं, उन्हें आगम सूत्रोंका पाठ पढ़ाते हैं, तथा भव्य जीवोको जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित मोक्ष मार्गका यथार्थ स्वरूप बतलाते हैं। ऐसे आचार्यको महानिशीथ[1] सूत्रमे तीर्थंकरके समान बतलाया है क्यो कि वह तीर्थंकराकी तरह ही सन्मार्गका प्रकाश करते हैं।

इसके विपरीत जो आचार्य जिन कथित मार्गोंका उल्लघन करते हैं, स्वय भ्रष्टाचारी होते हैं और भ्रष्टाचारी साधुओंकी उपेक्षा करते हैं—उनका नियत्रण नहीं करते वे जिन मार्गके नाशक हैं और उन्हें जिनागममें कापुरुष कहा है। ऐसे भ्रष्टाचारी आचार्योंकी जो सेवा करते हैं वे अपनेको ससार समुद्रमे डुबाते हैं।

क्यों कि यदि आचार्य ही प्रमादी हो जाय तो फिर किसका सहारा ले कर भव्य जीव अपना उद्धार कर सकते हैं। इससे पृथिवीकी तरह सहन शील मेरुकी तरह धर्ममें स्थिर और चन्द्रमाकी तरह सौम्य आचार्यको प्रशसाके योग्य कहा है। प्राणियोंको सिर्फ कर्म वगैरहकी शिक्षा देने वाले आचार्य भव-भवमें मिलते हैं किन्तु धर्मका आचरण करने और कराने वाले आचार्य कठिनतासे ही मिलते हैं। जो जिन भगवानके द्वारा उपदिष्ट निर्ग्रन्थ मार्गके अनुयायी हैं और मोक्ष-मार्गका उपदेश देते हैं।

---

* १—'तत्थ ण जे ते आयरिया ते तित्थयरसमा चेव'।

वे ही वास्तवमें आचार्य हैं ऐसे आचार्य दीपकके समान अपना भी प्रकाश करते हैं और दूसरोंको भी प्रकाश देते हैं। इसीसे कहा—

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्त वरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरियो णमो तस्स॥

—द्रव्यसंग्रह

अर्थात्—जो दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार और तपाचारमें स्वयं लगता है और दूसरोंको लगाता है उस आचार्यको नमस्कार हो।

उपाध्यायका स्वरूप—

जो उपयोग पूर्वक पापको छोड़ कर ध्यानके द्वारा कर्मोंका नाश करता है वह उपाध्याय कहा जाता है, जैसा कि कहा है—

उत्ति उवयोग करणे, झत्तिय झाणस्स होइ णिद्दे से ।
एएण होइ उज्झा एसो अन्नोऽवि पज्जातो ॥ १००२ ॥
उत्ति उपयोग करणे व त्तिय पाव परिवज्जणे होइ ।
झत्तिय झाणस्स कए उ त्तिय ओसक्कणा कम्मे ॥ १००३ ॥

—आ० नि०

दोनों सम्प्रदायोंमें उपाध्याय परमेष्ठीके २५ गुण बतलाये हैं। किन्तु संख्यामें समानता होते हुए भी नामोंमें अन्तर है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें—१२ अंगके पाठी, करण सित्तरी और चरण सित्तरी से युक्त, आठ प्रभावनाओंसे जैन मतका प्रकाश करनेवाला तथा तीन योगोंको वशमें करनेवाला उपाध्याय परमेष्ठी होता है। अत १२+२+८+३=२५ ये गुण उनके बतलाये हैं।

दिगम्बर परम्परामें—११ अंग और १४ पूर्वके पाठीको उपाध्याय कहा है। अत ११+१४=२५ ये ही उनके गुण होते हैं।

श्वे० महानिशीथ सूत्रमें कहा है कि जिन्होंने आस्रवके द्वारको भले प्रकारसे संवृत कर दिया है, मनोयोग, वचनयोग और काय योगको वशमें कर लिया है, स्वर, व्यञ्जन, बिन्दु, पद और अक्षरसे विशुद्ध द्वादशांग श्रुतज्ञानका जो चिन्तन करते हैं, अनुशरण करते हैं और ध्यान करते हैं वे उपाध्याय हैं। अत उपाध्यायमें द्वादशांगके पठन पाठनकी ही मुख्यता बतलायी है। अत वही उनके गुण हैं। इसीसे कहा है—

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्च धम्मोवदेसणे णिरदो ।
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवर वसहो णमो तस्स ॥ ५३ ॥

—द्रव्य संग्रह

अर्थात्—जो रत्नत्रयसे युक्त है, सदा धर्मका उपदेश देनेमें

तत्पर रहता है, मुनियोंमें श्रेष्ठ उस आत्माको उपाध्याय कहते हैं। उन्हें नमस्कार हो।

साधुका स्वरूप—

जो मोक्षके साधक व्यापारोंकी साधना करते हैं और सब प्राणियोंमें सम बुद्धि रखते हैं वे साधु परमेष्ठी हैं। जैसा कि श्वे० आवश्यक निर्युक्तिमें कहा है—

निव्वाणसाहए जोगे, जम्हा साहेंति साहुणो।
समा य सव्व भूएसु, तम्हा ते भाव साहुणो ॥१०१०॥

द्रव्यसंग्रहमें भी कहा है—

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥५४॥

जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान युक्त तथा मोक्षके मार्ग स्वरूप निर्दोष चारित्रकी सदा साधना करता है उन मुनिको साधु कहते हैं।

इससे स्पष्ट है कि मोक्ष मार्गकी साधना करनेवाला संयमी ही साधु कहा जाता है। ये साधु विषय सुखके सर्वथा त्यागी होते हैं, विशुद्ध चारित्रके धारी होते हैं, तात्त्विक गुणोंके साधक होते हैं और मोक्षके साधक जो कार्य हैं उनके करनेमें सदा तत्पर रहते हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें साधुओंके २७ गुण बतलाए हैं—५ महाव्रत, ५ इन्द्रियोंका जय, ४ कषायोंसे निवृत्ति, इन १४के साथ—मन वचन और कायको वशमें रखे—इस तरह १७ गुण। १८-सच्चे भाव, १९-शास्त्रानुकूल आचरण, २०-योगकी सत्यता, २१-ज्ञान सम्पन्न, २२ दर्शन सम्पन्न, २३ चारित्र सम्पन्न २४ क्षमाशील,

२५ सदा विरक्त, २६ समभावसे परीषहोंका सहन और २७ समाधिपूर्वक मरण।

साधुके लिए और भी बहुतसे नियम बतलाये हैं जिनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—साधु अपने लिए बनाये गये आहारको ग्रहण न करे, मोलकी वस्तु न ले, एक घरसे नित्य आहार न ले, रात्रिको चारों ही प्रकारका आहार ग्रहण न करे, स्नान नहीं करे, सुगन्धित द्रव्य न सूंघे, फूल माला नहीं पहरे, पखेसे हवा न करे, रात्रिको चारों ही प्रकारका आहार[1] पासमें न रखे, धातु पात्रमें भोजन नहीं करे, राजपिण्ड ग्रहण न करे, दानशालाका आहार नहीं ले, विना कारण शरीरका मर्दन नहीं करे, किसी भी सवारी पर नहीं बैठे, गृहस्थसे सुख साता नहीं पूछे, दर्पण वगैरहमें अपना मुंह न देखे, तास गजफा वगैरह नहीं खेले, ज्योतिषीपनेका काम नहीं करे, छत्र धारण नहीं करे, वैद्यक नहीं करे, पैरमें कुछ भी नहीं पहिने, जिसके यहाँ पर ठहरे उसका आहार नहीं ले, पलग वगैरह पर नहीं बैठे, वृद्धावस्था वगैरहके सिवाय गृहस्थके घरमे नहीं ठहरे, उबटन, हल्दी वगैरह न लगावे, गृहस्थकी वैयावृत्त्य न करे, रिश्तेदारी निकाल कर आहार न ले, अचित्त वस्तुका ही सेवन करे, दुःख होने पर गृहस्थकी शरण न ले, सिर डाढ़ी और मूछके बालोंका लोच करे, विना कारण दस्तोंकी दवा न ले, विना कारण शोभाके लिए अञ्जन न लगावे, दातुन नहीं करे, कसरत नहीं करे, औषधि खा कर या मुखमें अगुली डाल कर वमन नहीं करे, शरीरको सजावे नहीं, ।

दिगम्बर सम्प्रदायमें साधुके २८ मूलगुण बतलाये हैं जो इस प्रकार हैं—पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियोंको जीतना, ६ आवश्यक, स्नानका त्याग, भूमि पर सोना, वस्त्र धारण नहीं करना, केशलोंच, दिनमें एक बार भोजन, दाँतौन न करना, खड़े होकर आहार लेना।

पञ्चाध्यायी नामक ग्रन्थमें[1] साधुका स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

'सम्यग्दर्शन पूर्वक चारित्र ही मोक्षका मार्ग है। उस चारित्रकी आत्मसिद्धिके लिए जो साधन करता है उसे साधु कहते हैं। यह साधु न तो कुछ कहता ही है और न किसी प्रकारका संकेत ही करता है। तथा मनसे भी कुछ-कुछ चिन्तन नहीं करता। अर्थात् अपने मन, वचन और काय पर उसका पूरा नियंत्रण होता है। वह केवल अपने शुद्ध आत्मामें लीन रहता है। उसकी अन्तरंग और बाह्य वृत्तियाँ बिल्कुल शान्त होती ही हैं अत वह तरंग रहित समुद्रके समान होता है। वह वैराग्यकी पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ होता है और तुरन्तके जन्मे हुए बालककी तरह निर्विकार और नग्न होता है। सदा दयामें तत्पर रहता है, अन्तरंग और बहिरंग मोहकी ग्रन्थियोंका भेदक होनेसे निर्ग्रन्थ कहलाता है। तपस्याके द्वारा कर्मोंकी गुणश्रेणी निर्जरा करता है, परीषह, उपसर्ग वगैरह उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते, कामका विजेता होता है शुद्ध शास्त्रोक्त विधिसे आहार ग्रहण करता है और सदा त्यागमें तत्पर रहता है। इस प्रकारके अनेक साधुजनोचित सद्गुणोंसे युक्त साधु ही कल्याणकी भावनासे नमस्कार करनेके योग्य है।'

उपसंहार—

सारांश यह है कि जो वीतराग, सर्वज्ञ और मोक्ष मार्गका नेता होता है वही सच्चा गुरू है। इस दृष्टिसे सच्चे गुरू तो अरिहंत और सिद्ध ही हैं किन्तु उनसे नीचे भी जो अल्पज्ञ उसी रूपके धारक होते हैं वे भी गुरु हैं गुरुका लक्षण उनमें भी वैसा ही पाया जाता है। अन्य संसारी जीवोंसे वे विशिष्ट होते हैं।

१—श्लोक ६६७—६७४

२५ मन विरक्त, २६ समभावसे परीषहोंका सहन और २७ समाधिपूर्वक मरण।

साधुके लिए और भी बहुतसे नियम बतलाये हैं जिनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—साधु अपने लिए बनाये गये आहारको ग्रहण न करे, मोलकी वस्तु न ले, एक घरसे नित्य आहार न ले, रात्रिको चारों ही प्रकारका आहार ग्रहण न करे, स्नान नहीं करे, सुगन्धित द्रव्य न सूंघे, फूल माला नहीं पहरे, पंखेसे हवा न करे, रात्रिको चारों ही प्रकारका आहार पासमें न रखे, धातु पात्रमें भोजन नहीं करे, राजपिण्ड ग्रहण न करे, दानशालाका आहार नहीं ले, विना कारण शरीरका मर्दन नहीं करे, किसी भी सवारी पर नहीं बैठे, गृहस्थसे सुख साता नहीं पूछे, दर्पण वगैरहमें अपना मुंह न देखे, तास गंजफा वगैरह नहीं खेले, ज्योतिषीपनेका काम नहीं करे, छत्र धारण नहीं करे, वैद्यक नहीं करे, पैरमें कुछ भी नहीं पहिने, जिसके यहाँ पर ठहरे उसका आहार नहीं ले, पलंग वगैरह पर नहीं बैठे, वृद्धावस्था वगैरहके सिवाय गृहस्थके घरमें नहीं ठहरे, उबटन, हल्दी वगैरह न लगावे, गृहस्थकी वैयावृत्त न करे, रिश्तेदारी निकालकर आहार न ले, अचित्त वस्तुका ही सेवन करे, दुःख होने पर गृहस्थकी शरण न ले, सिर दाढ़ी और मूछके बालोंका लोच करे, विना कारण दस्तोंकी दवा न ले, विना कारण शोभाके लिए अञ्जन न लगावे, दातुन नहीं करे, कसरत नहीं करे, औषधि खा कर या मुखमें अंगुली डाल कर वमन नहीं करे, शरीरको सजावे नहीं, ।

दिगम्बर सम्प्रदायमें साधुके २८ मूलगुण बतलाये हैं जो इस प्रकार हैं—पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियोंको जीतना, ६ आवश्यक, स्नानका त्याग, भूमि पर सोना, वस्त्र धारण नहीं करना, केशलोंच, दिनमें एक बार भोजन, दाँतौन न करना, खड़े होकर आहार लेना।

पञ्चाध्यायी नामक ग्रन्थमें[1] साधुका स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

'सम्यग्दर्शन पूर्वक चारित्र ही मोक्षका मार्ग है। उस चारित्रकी आत्मसिद्धिके लिए जो साधन करता है उसे साधु कहते हैं। यह साधु न तो कुछ कहता ही है और न किसी प्रकारका सकेत ही करता है। तथा मनसे भी कुछ-कुछ चिन्तन नहीं करता। अर्थात् अपने मन, वचन और काय पर उसका पूरा नियंत्रण होता है। वह केवल अपने शुद्ध आत्मामें लीन रहता है। उसकी अन्तरग और बाह्य वृत्तियाँ बिल्कुल शान्त होती ही हैं अत. वह तरग रहित समुद्रके समान होता है। वह वैराग्यकी पराकाष्ठा पर पहुचा हुआ होता है और तुरन्तके जन्मे हुए बालककी तरह निर्विकार और नग्न होता है। सदा दयामें तत्पर रहता है, अन्तरंग और बहिरग मोहकी ग्रन्थियोंका भेदक होनेसे निर्ग्रन्थ कहलाता है। तपस्याके द्वारा कर्मोंकी गुणश्रेणी निर्जरा करता है, परीषह, उपसर्ग वगैरह उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते, कामका विजेता होता है शुद्ध शास्त्रोक्त विधिसे आहार ग्रहण करता है और सदा त्यागमें तत्पर रहता है। इस प्रकारके अनेक साधुजनोचित सद्गुणोंसे युक्त साधु ही कल्याणकी भावनासे नमस्कार करनेके योग्य है।'

उपसंहार—

साराश यह है कि जो वीतराग, सर्वज्ञ और मोक्ष मार्गका नेता होता है वही सच्चा गुरू है। इस दृष्टिसे सच्चे गुरू तो अरिहंत और सिद्ध ही हैं किन्तु उनसे नीचे भी जो अल्पज्ञ उसी रूपके धारक होते हैं वे भी गुरु हैं गुरुका लक्षण उनमें भी वैसा ही पाया जाता है। अन्य ससारी जीवोंसे वे विशिष्ट होते हैं।

१—श्लोक ६६७—६७४

२५ सदा विरक्त, २६ समभावसे परीपहोंका सहन और २७ समाधिपूर्वक मरण।

साधुके लिए और भी बहुतसे नियम बतलाये हैं जिनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—साधु अपने लिए बनाये गये आहारको ग्रहण न करे, मोलकी वस्तु न ले, एक घरसे नित्य आहार न ले, रात्रिको चारों ही प्रकारका आहार ग्रहण न करे, स्नान नहीं करे, सुगन्धित द्रव्य न सूंघे, फूल माला नहीं पहरे, पखेसे हवा न करे, रात्रिको चारों ही प्रकारका आहार[1] पासमें न रखे, धातु पात्रमे भोजन नहीं करे, राजपिण्ड ग्रहण न करे, दानशालाका आहार नहीं ले, विना कारण शरीरका मर्दन नहीं करे, किसी भी सवारी पर नहीं बैठे, गृहस्थसे सुख साता नहीं पूछे, दर्पण वगैरहमें अपना मुँह न देखे, तास गजफा वगैरह नहीं खेले, ज्योतिषीपनेका काम नहीं करे, छत्र धारण नहीं करे, वैद्यक नहीं करे, पैरमें कुछ भी नहीं पहिने, जिसके यहाँ पर ठहरे उसका आहार नहीं ले, पलग वगैरह पर नहीं बैठे, वृद्धावस्था वगैरहके सिवाय गृहस्थके घरमे नहीं ठहरे, उबटन, हल्दी वगैरह न लगावे, गृहस्थकी वैयावृत्त न करे, रिश्तेदारी निकालकर आहार न ले, अचित्त वस्तुका ही सेवन करे, दु ख होने पर गृहस्थकी शरण न ले, सिर डाढी और मूछके वालोंका लोच करे, विना कारण दस्तोंकी दवा न ले, विना कारण शोभाके लिए अञ्जन न लगावे, दातुन नहीं करे, कसरत नहीं करे, औषधि खा कर या मुखमें अगुली डाल कर वमन नहीं करे, शरीरको सजावे नहीं, ।

दिगम्बर सम्प्रदायमें साधुके २८ मूलगुण बतलाये हैं जो इस प्रकार हैं—पॉच महाव्रत, पॉच समिति, पॉच इन्द्रियोंको जीतना, ६ आवश्यक, स्नानका त्याग, भूमि पर सोना, वस्त्र धारण नहीं करना, केशलोंच, दिनमें एक वार भोजन, दॉतौन न करना, खड़े होकर आहार लेना।

पञ्चाध्यायी नामक ग्रन्थमें[1] साधुका स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

'सम्यग्दर्शन पूर्वक चारित्र ही मोक्षका मार्ग है। उस चारित्रकी आत्मसिद्धिके लिए जो साधन करता है उसे साधु कहते हैं। यह साधु न तो कुछ कहता ही है और न किसी प्रकारका संकेत ही करता है। तथा मनसे भी कुछ-कुछ चिन्तन नहीं करता। अर्थात् अपने मन, वचन और काय पर उसका पूरा नियंत्रण होता है। वह केवल अपने शुद्ध आत्मामें लीन रहता है। उसकी अन्तरंग और बाह्य वृत्तियाँ बिल्कुल शान्त होती ही हैं अतः वह तरंग रहित समुद्रके समान होता है। वह वैराग्यकी पराकाष्ठा पर पहुचा हुआ होता है और तुरन्तके जन्मे हुए बालककी तरह निर्विकार और नग्न होता है। सदा दयामें तत्पर रहता है, अन्तरंग और बहिरंग मोहकी ग्रन्थियोंका भेदक होनेसे निर्ग्रन्थ कहलाता है। तपस्याके द्वारा कर्मोंकी गुणश्रेणी निर्जरा करता है, परीषह, उपसर्ग वगैरह उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते, कामका विजेता होता है शुद्ध शास्त्रोक्त विधिसे आहार ग्रहण करता है और सदा त्यागमें तत्पर रहता है। इस प्रकारके अनेक साधुजनोचित सद्गुणोंसे युक्त साधु ही कल्याणकी भावनासे नमस्कार करनेके योग्य है।'

उपसंहार—

साराश यह है कि जो वीतराग, सर्वज्ञ और मोक्ष मार्गका नेता होता है वही सच्चा गुरू है। इस दृष्टिसे सच्चे गुरू तो अरिहत और सिद्ध ही हैं किन्तु उनसे नीचे भी जो अल्पज्ञ उसी रूपके धारक होते हैं वे भी गुरु हैं गुरुका लक्षण उनमें भी वैसा ही पाया जाता है। अन्य ससारी जीवोंसे वे विशिष्ट होते हैं।

१—श्लोक ६६७—६७४

इसके सिवा भावी नैगम नयकी अपेक्षासे जो भविष्यमें सच्चा गुरु होनेवाला है वह उसीके तुल्य माना जाता है, क्योंकि जो गुण अरिहतमे हैं उन्हींका एक देश आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओंमे पाया जाता है। मिथ्यात्व कर्मका उपशम आदि हो जानेसे उनमे सम्यग्दर्शन होता ही है और चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम होनेसे एक देश सम्यक् चारित्र भी रहता ही है। अत. उनमें मोहनीय कर्मके उदयका यथायोग्य अभाव होनेसे शुद्धता पायी जाती है। यह शुद्धता ही संवर और निर्जराका कारण है तथा क्रमसे मोक्ष प्राप्त करानेवाली भी है। अत आत्माका यह शुद्ध भाव ही पूजनीय होता है। और जिसमें यह शुद्ध भाव होता है वही सच्चा गुरु है। वास्तवमे गुरुपनेका कारण दोषोंका अभाव है। जो निर्दोष है वही जगतका साक्षात्-कार करता है और वही मोक्ष मार्गका नेता होता है। अत अल्पज्ञ होनेसे गुरुपनेमें कोई क्षति नही आती है। उसमे क्षति केवल मोहजन्य रागादि अशुद्ध भावोंसे आती है। शायद कोई कहे कि आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठीमे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वीर्यान्तराय कर्म मौजूद हैं तब वह शुद्धता कैसे हो सकती है? इसका समाधान यह है कि यद्यपि उनमे तीनों घाति कर्म मौजूद है, किन्तु उनका बन्ध, सत्त्व, उदय और क्षय मोहनीय कर्मका अविनाभावी है। (अर्थात् मोहनीय कर्मका बन्ध होनेपर उनका बन्ध होता है, मोहनीय कर्मका उदय होनेपर उनका उदय होता और मोहनीय कर्मका सत्त्व होने पर उनका सत्त्व रहता है। तथा मोहनीय कर्मके क्षय होते ही अन्तर्मुहूर्तके पश्चात उनका क्षय हो जाता है)। इसलिए तीन घाति कर्मोंके मौजूद होते हुए भी राग द्वेष और मोहका अभाव होनेसे आचार्य उपाध्याय और साधु गुरु हैं। ये तीनों ही मुनिवर विशिष्ट पदों पर होनेके कारण तीन रूप माने जाते है।

इन तीनोका उद्देश्य एक है, क्रिया एक है, बाह्य वेष भी एक है, बारह प्रकारका तप, पाच महाव्रत, तेरह प्रकारका चारित्र मूलगुण, उत्तरगुण, सयम समताभाव भी समान हैं, परिषह और उपसर्गोंको तीनों ही समान रूपसे सहन करते हैं। आहार वगैरह की विधि, चर्या और आसन वगैरह भी समान है। मोक्षका मार्गभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र, भी अन्तरंग और बाहरमें समान है। ध्याता ध्यान, ध्येय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, चार प्रकारकी आराधना और क्रोध वगैरहको जीतना भी समान है। साराश यह है कि आध्यात्मिक और बाह्य दृष्टिसे उनमें कोई अन्तर नहीं है जो कुछ अन्तर है वह अपने अपने विशिष्ट पदों और तत्सम्बन्धी विशेपताओंके कारण है अत. तीनों ही पूज्य हैं-आराध्य हैं और नमस्करणीय हैं। अत :—

असहाये सहायत्तं करेंति मे संजमं करेंतस्स ।
एएण कारणेण नमामऽहं सव्व साहूणं ॥१०१३॥

'इस संसारमें कोई भी किसीका सहायक नहीं है, फिर भी संयमकी साधना करनेमें हमें इनसे सहायता मिलती है इसलिए हम सब साधुओंको नमस्कार करते हैं।

सक्षेपमे नमस्कार मन्त्रमें जिन्हें नमस्कार किया गया है उनका यह स्वरूप है। जो मनन करनेके लायक है क्यों कि उसको समझे विना नमस्कार मंत्रका महत्त्व और उच्च लक्ष्य दृष्टिमे नहीं आ सकता। और उसके दृष्टिमे आये विना सच्चे दिल और सच्ची लगनसे उनकी आराधना नहीं हो सकती। और सच्चे दिल तथा सच्ची लगनसे आरधना किये विना मनवाछित फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अत जो चाहता है कि इस महा मन्त्रकी आराधनाके द्वारा मेरी मनोवाछा पूर्ण हो उसे महामन्त्रके पवित्र उद्देश्यपर

पहले दृष्टि डालनी चाहिए। उसके बाद शास्त्रोक्त विधिसे उसकी आराधना करनी चाहिए।

प्रयोजन और फल—

(शास्त्रकारोंने नमस्कार मन्त्रका प्रयोजन बतलाते हुए लिखा है कि इसके दो फल हैं—एक तात्कालिक फल और दूसरा कालान्तर-भावी फल। इसके करते ही ज्ञानावरण आदि कर्मका क्षय होता है और मंगलकी प्राप्ति होती है यह तो तात्कालिक फल है। कालान्तर-भावी फल भी इस लोक और परलोककी अपेक्षासे दो प्रकारका है। इसके करनेसे इस लोकमें अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है, रोग दूर होता है ये सब इहलौकिक फल हैं। मुक्ति, स्वर्ग और सुकुल वगैरहकी प्राप्ति पारलौकिक फल हैं।

अब प्रश्न यह है कि यह फल मिलता कैसे है? क्या नमस्कारसे प्रसन्न हो कर स्वय अर्हन्त और सिद्ध ये फल देते हैं? किन्तु ऐसा तो सम्भव नहीं है क्योंकि अर्हन्त और सिद्ध वीतराग होते हैं न वे किसीके नमस्कार करनेसे उसपर प्रसन्न होते हैं और न किसीके नमस्कार न करनेसे उसपर नाराज होते हैं, यदि हों तो वे वीतराग नहीं कहलाये गे?

इसका समाधान यह है कि नमस्कारका वास्तवमें मुख्य फल तो मोक्ष ही है। और मोक्ष आत्माकी ही अवस्था विशेष है जैसे कि जीवका चैतन्य धर्म। अत उसे कोई दूसरा नहीं दे सकता, वह तो अपने ही प्रयत्न और पौरुषसे मिलता है। रहा आनुसङ्गिक फल स्वर्ग आदि। वह जीवको अपने अपने शुभाशुभ कर्मोंसे मिलता है। अत उसका भी कोई दाता नहीं है। यदि ये जिन सिद्ध या कोई देव किसीसे रुष्ट हो कर उसका पुण्य छीन लें और पाप उसे दे दें, अथवा किसीसे प्रसन्न होकर उसे पुण्य सौंप

दें और पाप उससे ले लें तो किये कर्मके नाशका और विना किये कर्मकी प्राप्तिका प्रसंग उपस्थित हो जायगा। और इससे लोकमें गड़बड़ी पैदा हो जायगी। अत सुख दु ख वगैरहका कारण अपना कर्म ही है वाह्य वस्तु उसमें निमित्त मात्र है। अतः वास्तवमें कोई किसीको कुछ नहीं देता है। ऐसी परिस्थितिमें 'वीतरागी जिन और सिद्ध नमस्कारका फल देते है' यह चर्चा ही वेकार है।

इसलिए नमस्कार मन्त्र न तो किसीको कुपित करनेके लिए जपा जाता है और न किसीको प्रसन्न करनेके लिए जपा जाता है। किन्तु अरिहत आदिके गुणोंका समादर करनेसे चित्त प्रसन्न होता है। उससे शुभ परिणाम होते हैं। शुभ परिणामोंसे धर्म होता है और धर्मसे अर्थ, काम, स्वर्ग वगैरहकी प्राप्ति होती है। अत नमस्कार मन्त्रसे यथोक्त फलकी प्राप्ति होती है। साराश यह है कि अपनेमें शुभ या अशुभ परिणाम करनेसे धर्म अथवा अधर्मकी प्राप्ति होती है अत जो धर्मका इच्छुक है उसे चाहिये कि सदा ऐसा प्रयत्न करता रहे जिससे परिणाम शुभ ही रहें। जिन और सिद्ध वगैरहके समादरसे, नाम स्मरणसे, गुण कीर्तनसे अवश्य ही शुभ परिणाम होते है, जिनका फल अपरिमित। उसीके लिए यह प्रयत्न है।

नमस्कार मंत्रको जपनेकी विधि—

पहले लिख आये हैं कि जो पाठ करनेसे सिद्ध हो वह मन्त्र है अत. नमस्कार मन्त्रका जप और ध्यान किया जाता है। उसके जप करनेकी कई विधियाँ हैं जो व्यक्तिकी शक्ति और स्थिरतापर निर्भर हैं।

मन्त्रका जप या ध्यान करनेसे पहले कुछ आवश्यक बातोंपर दृष्टि होना आवश्यक है। सबसे प्रथम मन्त्रपर श्रद्धाका होना

हमारे पूर्वाचार्योंने तो स्पष्ट और शुद्ध उच्चारणके लिए तरह-तरहकी बातें स्पष्ट कर दी हैं—जैसे नवकार मन्त्रमें पदसख्या नौ, विराम आठ, गुरुवर्ण ७, लघुवर्ण ६१ और समस्त वण ६८ बतलाये हैं। इसी तरह नमस्कार मंत्रमें पद संख्या ५ विराम ४ और समस्त वर्ण ३५ बतलाये हैं। इतना ही नहीं किन्तु यह भी बतलाया है कि नमस्कार मंत्रका उच्चारण कितने श्वासोच्छ्वास कालमें होना चाहिये और किस पदके उच्चारणमें कितना काल लगाना चाहिये ये सब बातें इसीलिए बतलायी हैं कि जप करने वाले असावधानता या जल्दीमें अशुद्ध पाठ करनेसे विरत रहें। महानिशीथ सूत्रमें तो बिना उपधान किये नवकार मंत्रके जपनेका निषेध किया है। उपधानकी विधिका सार इस प्रकार है—शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्तमें नि.शङ्क होकर जब वैराग्यकी प्रबल तरगोंसे शुभ परिणाम पूर्वक हृदय भक्तिसे भरा हो, तो अत्यन्त आदरके साथ उपवास पूर्वक चैत्यालयमें जन्तु रहित स्थानमें जाय। उस समय भक्तिसे सारा शरीर रोमाचित हो, नेत्र प्रसन्न हों, दृष्टि स्थिर हो, अन्त करण स्थिर निर्मल और दृढ़ हो। पृथिवी पर जानुके सहारे बैठकर दोनों हाथोंकी अजलि बनाकर मस्तकसे लगावे। और श्री ऋषभ देव आदि तीर्थङ्करोंकी प्रतिमा पर दृष्टि स्थिर करके उसीमें अपने मनको रमा दे। फिर भयानक संसार समुद्रसे उतारनेके लिए यान स्वरूप श्री पञ्च मंगल महाश्रुत-स्कन्ध (नमस्कार मन्त्र) के प्रथम पद 'णमो अरिहंताणं' का जप करे। इसी विधिसे दूसरे दिन 'णमो सिद्धाणं' का जप करे, तीसरे दिन 'णमो आइरियाणं' का जप करे, चौथे दिन 'णमो उवज्झायाणं' का जप करे, पाचवें दिन 'णमो लोए सव्वसाहूणं' का जप करे। फिर इसी विधिसे छठे, सातवें और आठवें दिन मन्त्रकी चूलिका 'एसो पंचणमुक्कारो, आदिका पाठ करे। इस प्रकार इस महाश्रु-

तस्कन्धको स्वर, वर्ण, विन्दु आदिकी शुद्धतापूर्वक पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और अनानुपूर्वीसे पाठ करना चाहिये।' इत्यादि

इस उपधान विधिको सुनकर गौतमने भगवान् महावीरसे प्रश्न किया— भगवन ! यह विधि तो बड़ी कठिन है। इसे कैसे किया जा सकता है। तो भगवानने उत्तर दिया गौतम ! जो बिना इस उपधानके मन्त्रका जाप करेगा, पढ़ेगा, पढावेगा, अनुमोदना करेगा, आदि उसको बडी आसावना लगेगी वह गुरुजनों आदिको लज्जित करेगा '।

इस तरह महानिशीथ सूत्रमें उपधानकी बडी कठोर विधि बतलायी है और उसके बिना नमस्कार मन्त्रके उच्चारण तकका निषेध किया है। ऐसी स्थितिमें जो लोग उसे अशुद्धतापूर्वक, बिना मनोयोगके जल्दी-जल्दी जपते हैं, उनको उससे फल प्राप्ति या मन्त्र सिद्धि कैसे हो सकती है ?

'अत स्थिर चित्तसे मन वचन और कायको एकाग्र करके, निराकुल होकर, किसी, शान्त-स्थानमें जहा कोई भयका कारण न हो, सुखासनसे बैठ कर या खडे होकर मन्त्रका जाप करना चाहिये। जापकी सख्या बतानेके लिए कोई आधार होना जरूरी है जिससे यह मालूम हो सके कि कितनी बार मन्त्रका जाप हुआ। इसके लिए सबसे सरल और सीधा उपाय माला है । मालाके मणियोंमें जाप करनेसे यह पता चल जाता है कि कितनी बार जप हुआ। माला सूतकी, चन्दनकी, मूगेकी या अन्य कीमती मणियोंकी अपनी शक्तिके अनुसार ली जा सकती है।

श्वे० ग्रन्थ आचारदिनकरमें तो मालाकी प्रतिष्ठा करानेका भी विधान है और प्रतिष्ठित मालासे जाप करना उचित बतलाया है। माला साफ सुथरी रहे इसका ध्यान रखना आवश्यक है। गन्दी मालासे मनको विक्षोभ होता है। जब जाप करना है तो जिस मालापर जाप हो वह तो साफ सुथरी होनी ही चाहिए।

एकीभाव स्तोत्रमें लिखा है—

प्रापद्दैवं तव नुतिपदै र्जीवकेनोपदिष्टैः
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः संदेहो यदुपलभते वासवश्री प्रभुत्वं
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम्॥१२॥

अर्थात्—'हे जिनेन्द्र! मरते समय जीवकके द्वारा दिये गये आपके नमस्कार पदोंसे पापी कुत्तेने भी देवगतिके सुखको प्राप्त कर लिया। ऐसी स्थितिमें निर्मल मणियोंके द्वारा आपके नमस्कार मन्त्रका जप करनेवाला यदि इन्द्र पदको प्राप्त कर लेता है। तो इसमें सन्देह ही क्या है?

अब माला मणिमुक्ता की न हो तो साफ सुथरी अवश्य होनी चाहिए। जाप करते समय माला हाथमें रखनकी भी एक निश्चित विधि है। मालाको दाहिने हाथके अगूठे पर रखना चाहिए। और दाहिना हाथ हृदयके पास रखना चाहिए। माला इतनी लम्बी न हो कि फेरते समय दाहिन हाथके अगूठे पर लटकानेपर नाभिके नीचे तक पहुँचे। जो मनुष्य अपने घुटने पर या पावपर या पलोटीमे हाथ रखकर माला फेरते हैं वह भूल करते हैं।

शुभकार्यके लिए सफेद माला होनी चाहिए और कष्ट निवारण लिए लाल रगकी माला अच्छी वतलायी गया है। तथा जो मोक्षाभिलाषी हैं उन्हें अगूठेपर रखी हुई मालाको अगूठेके पासवाली अगुलीकी सहायतास फेरना चाहिए। जो किसी शुभ कामनाकी पूर्तिके लिए जप करते हो उन्हें बीचकी अंगुलीसे माला फेरनी चाहिए। जो क्लेश आदि दूर करना चाहें वे बीचकी अगुलीके पासवाली तर्जनी अगुलीसे माला फेरें।

जो लोग मालाके बजाय अपने हाथकी अगुलियोंपर ही

जाप करना चाहते हो वे उन पर भी जाप कर सकते हैं। इस तरहसे जाप करनेको आवर्त कहते हैं। आवर्तके अनेक प्रकार हैं उन सबको यहाँ लिखना शक्य नहीं है।

यह पहले लिख आये हैं कि नमस्कार मन्त्रका स्मरण मनोयोग पूर्वक होना चाहिए। अत उस समय मनका एकाग्र होना आवश्यक है। मनका एकाग्र रखनेके लिए भी आचार्योंने अनेक उपाय बतलाये हैं। उनमेंसे सबसे सरल उपाय तो अनानुपूर्वी है। इसमें एकसे लेकर पाच तकके अक आगे पीछे ऊपर नीचे व्यक्तिक्रमसे लिखे होते हैं और जहाँ एकका अक होता है वहाँ 'णमो अरिहंताण' जहाँ दो का अक हो वहाँ 'णमो सिद्धाण' जहाँ तीनका अंक हो वहाँ 'णमो आइरियाण' इसप्रकार पढना चाहिए। अकोको उलट सुलट कर रखे होनेके कारण जाप करते समय मन इधर उधर नहीं भटकता। भटकनेसे गल्ती पाठ होनेका भय रहता है। मनको एकाग्र रखनेकी दृष्टिसे उत्तम प्रकार नीचे दिया जाता है।

जाप करनेवाला मनुष्य अपने मनमें एक आठ पाखुड़ीके कमलकी कल्पना करे। उसके बीचमें एक कर्णिका हो। फिर कर्णिका तथा प्रत्येक पाखुड़ीपर पॉच-पाँच किरणोंके बारह बारह तारोंकी कल्पना करे ये सब तारे एक सौ आठ हो जायेंगे। फिर कर्णिकासे प्रारम्भ करके क्रमसे सब तारोंपर नमस्कार मन्त्रका जाप करे। इसमें चित्तकी विशेष एकाग्रता होना आवश्यक है। जरा भी चूकनेसे सब गडबड़ पड़ जाता है। अत ध्यानका अभ्यास होना आवश्यक है और उसके लिए इस तरहका जाप एक अच्छा उपाय है।

श्वेताम्बराचार्य श्रीपादलिप्त कृत प्रतिष्ठाकल्प पद्धतिमें लिखा है कि जप तीन प्रकारसे किया जाता है–प्रथम मानस, दूसरा उपांशु, तीसरा भाष्य। जो जप मन ही मनमें किया जाता है उसे मानस कहते हैं। उपांशु उसे कहते हैं जो अन्तर्जल्प रूप हो और जिसे

कोई सुन न सके। इसमें मन्त्रके शब्द मुखसे बाहर नहीं निकलते और कण्ठ स्थानमें ही गूँजते रहते हैं। मन्त्रको मुंहसे बोलते हुए जपनेको भाष्य कहते हैं। इन तीनोंमें सबसे उत्तम मानस जप है, मानस जपसे नीचे उपांशु है और उपांशुसे निकृष्ट भाष्य जप हैं। इसीसे प्रारम्भमें भाष्यजप किया जाता है. मन्त्रोंको मुखसे बोलकर जपनेसे जप करने वालेका मन उधर लग जाता है। इसके पश्चात् उपांशु जपकी ओर बढ़ना चाहिये अर्थात् मन्त्रोंको मुखसे न बोलकर कण्ठमें ही उच्चारण करना चाहिये। इसके पश्चात् मानस जप तो सर्व श्रेष्ठ है ही। इसमें जपका स्थान कण्ठ देश भी न होकर हृदय देश होता है. हृदयमें ही मन्त्रका चिन्तन चलता रहता है। यह मानस जप ही अभ्यास बढने पर ध्यानका रूप ले लेता है। इसीसे शास्त्रकारोंने लिखा है कि वाचनिक जपसे यदि सौ गुणा पुण्य होता है तो मानस जपसे हजार गुणा पुण्य होता है। हृदय देशमें एक खिले हुए आठ पाखुडीके कमलकी स्थापना करके मनके साथ प्राणवायुको अन्दर स्थिर करके पञ्च नमस्कार मन्त्रका चिन्तन करनेको मानस जप कहते हैं। मानस जपके लिये हृदयमें कमलका आकार चिन्तन किया जाता है जैसा कि पहले कहा है। एक 'णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं' के अन्तमें, फिर 'णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं' के अन्तमें और तीसरा णमो लोए सव्वसाहूणं' के अन्तमें, इस तरह तीन उच्छ्वास लिये जाते हैं और तीन उच्छ्वासोंमें एकबार जप होता है। नौ बार जप करनेमें २७ उच्छ्वास होते हैं। इस रीति से नौ बार करनेपर चिर सचित पाप भी नष्ट हो जाते हैं।

पञ्चपरमेष्ठीके नमस्काररूप कुछ अन्य मंत्र

श्री ज्ञानार्णवमें पञ्चपरमेष्ठीके नमस्काररूप मंत्रोंके ध्यानकी विधि तथा फल विस्तारसे बतलाया है। वह यहां दिया जाता है—

निर्मल चन्द्रमा की कान्तिके समान आठ पत्रोंके एक कमलका हृदय देशमें चिन्तन करे। उस कमलकी कर्णिकापर 'णमो अरिहंताणं' सात अक्षरोंके इस मंत्रका चिन्तन करें और उस कर्णिकासे लगे हुए आठ पत्रोंमेंसे चारों दिशाओंके चार पत्रोंपर 'णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं, इन चार मंत्रपदोंका चिन्तन करे और विदिशाओंके चार पत्रोंपर 'सम्यग्दर्शनाय नम, सम्यग्ज्ञानाय नम, सम्यक्चारित्राय नम, सम्यक् तपसे नम, इन चार मंत्रोंका चिन्तन करे। इस प्रकार कमलके आठ पत्र और उसकी एक कर्णिकापर उक्त नौ मन्त्रोंको स्थापित करके उनका चिन्तन करना चाहिये। ज्ञानार्णवमें इसका वडा माहात्म्य बतलाया है। लिखा है कि जिन योगियोंने इस लोकमें मुक्ति प्राप्त की उन्होंने इस महामन्त्रके आराधनके द्वारा ही प्राप्ति की, इसी मन्त्रके प्रभावसे पापी जीव शुद्ध होते हैं और इसी मंत्रके प्रभावसे बुद्धिमान मनुष्य संसारके दु खोंसे छुटकारा पाते हैं। हजारों पाप करके और सैकडों जीवोंको मारकर तिर्यञ्च भी इस महामन्त्रकी आराधनाके द्वारा स्वर्गको प्राप्त हुए। जो मुनि मन वचन कायको शुद्ध करके एक सौ आठ वार उक्त मन्त्रका चिन्तवन करता है वह एक उपवासके फलको प्राप्त करता है।

पञ्चपरमेष्ठियोंके नामोंको लिये हुए तथा पञ्च नमस्कार मन्त्रसे उत्पन्न दूसरा मन्त्र सोलह अक्षरोंका है–'अर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नम। जो एकाग्रमन होकर दो सौ वार इस मन्त्रका जप करता है उसे एक उपवासका फल प्राप्त होता है।

तीसरा मन्त्र छै अक्षरोंका है–'अरिहन्त सिद्ध'। इसका तीन सौ वार जप करनेसे एक उपवासका फल होता है। चौथा मन्त्र है–'अरहंत'। चार अक्षरोंके इस मंत्रका चार सौ वार जप

करनेसे एक उपवासका फल प्राप्त होता है। पांचवां मन्त्र है-'सिद्ध'। यह मन्त्र द्वादशांग वाणीका सारभूत है, मोक्ष देनेवाला है और संसारके समस्त क्लेशों का नाश करनेवाला है।

छठा मन्त्र है-'ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः।' इस मन्त्रका निरन्तर अभ्यास करनेसे मनको वशमें रखनेवाला मुनि संसार बन्धनको शीघ्र ही काट डालता है।

इसी तरह पञ्च नमस्कारके पदों वगैरहको लेकर ऋद्धि सिद्धि दायक अनेक मन्त्र हैं, जिनके ध्यान से सांसारिक दुःखोंसे छुटकारा मिलता है।

जैनाचार और णमोकार मंत्र—

जैन आचार श्रावक और मुनिके भेदसे दो प्रकारका है। आचार शास्त्रके ग्रन्थोंके अवलोकनसे प्रकट होता है कि जैन आचारमें णमोकार मन्त्र छाया हुआ है। सबसे प्रथम श्रावकके आचारको लें। जब कोई अजैन जैनधर्म स्वीकार करना चाहता है तो श्रावक के व्रत धारण करनेके लिये सबसे प्रथम उसे अपराजित महामन्त्र (नमस्कारमन्त्र) ही प्रदान किया जाता है। नमस्कार मन्त्रको अपनानेके पश्चात् ही उसे श्रावक की दीक्षा दी जाती है। आदि पुराणमें लिखा है कि जिनालयकी पवित्र रंग भूमिमें अष्टदल कमल मांडे अथवा गोल समवसरणका मंडल मांडे। यह मण्डल चिकने चूर्णसे अथवा चन्दन घिसकर उससे बनावें। उसके पश्चात् उसकी पूजन की जानी चाहिये। आचार्य जिन दीक्षा लेनेवालेको जिनेन्द्रके सामने बैठावें और उसके मस्तकको स्पर्श करते हुए कहें कि यह तेरी श्रावक दीक्षा है। तथा मस्तकको पंच मुष्टि विधानके अनुसार स्पर्श करके 'तू पवित्र हो गया, दीक्षा ले' ऐसा कहकर आशीर्वाद देवें। उसके

वाद सबसे पहले उसे णमोकार मन्त्र देवें और कहे कि यह मत्र तुझे सब पापोंसे बचावे। आदि।

श्रावकाचारमे लिखा है कि जब श्रावक सोकर उठे तो उठते ही उसे पञ्चनमस्कारमन्त्र पढना चाहिए। उसके पढनेसे अनेक विघ्नबाधाएं तो दूर होती ही हैं, मनको भी शान्ति मिलती है। इसी तरह रात्रि को सोनेसे पहले नमस्कार मत्रको नौ वार जपनेसे दु स्वप्न नहीं आते, निद्रा अच्छी तरहसे आती है और मन शान्त रहता है। जब गृहस्थ शुद्ध होकर देव दर्शन करता है तो सबसे प्रथम नमस्कार मत्रको ही पढता है। इसी तरह जब वह पूजन करता है तो प्रारम्भमे नमस्कार मन्त्र पढकर उसीकी स्थापना करता है उसके पश्चात् पूजा प्रारम्भ करता है जप या सामायिकमे भी नमस्कार मन्त्र का ही जप या ध्यान किया जाता है। साराश यह है कि श्रावक की प्रत्येक शुभ क्रियाके आदिमें नमस्कार मत्रका उपयोग होता है। अब मुनि-आचार को लीजिये।

मुनि के २८ मूलगुणों में छै आवश्यक बतलाए हैं—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग। पीडित अवस्थामें भी मुनि को ये छै कर्म प्रतिदिन अवश्य करने होते हैं इसीसे इन्हें षडावश्यक कहते हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे सामायिकके छै भेद हैं। सामायिकका मतलब है—समता या साम्यभाव। (मेरा नाम कोई आदरसे ले तो मैं उससे राग नहीं करूँगा और आदरसे न ले तो द्वेष नहीं करूँगा, यह नाम सामायिक है।) यह मूर्ति जिस अर्हद्रूपका स्मरण कराती है, मैं उस अर्हद्रूप नहीं हूँ, तब इस मूर्तिरूप तो मैं कैसे हो सकता हूँ, अत· मेरा मूर्तिमे भी साम्यभाव है। यह स्थापना सामायिक है। स्वद्रव्यकी तरह परद्रव्यमें भी साम्यभाव रखनेको द्रव्यसामायिक कहते हैं। नगर और वनमें

ईर्यापथिक और उत्तमार्थिक। अन्त समयमे समस्त दोषोंकी आलोचना पूर्वक चार प्रकारके आहारका त्याग करना उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है। पापको रोकनेके लिए मनवचन कायसे रत्नत्रयके घातक द्रव्य क्षेत्र काल भाव वगैरहका त्याग करनेको प्रत्याख्यान कहते हैं।

दोनो पैरोंके बीचमे चार अगुलका अन्तर रखते हुए तथा दोनो हाथोंको नीचे लटकाकर निश्चल खडे होनेको कायोत्सर्ग कहते हैं। कायोत्सर्गका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त हैं और उत्कृष्ट काल एक वर्ष है। (इस कायोत्सर्गमे पञ्चनमस्कार मत्रका चिन्तन किया जाता है। एक वारके चिन्तनमे तीन उच्छ्वास लगते हैं, यह पहले लिख आये हैं। अत नौवार जप करनेमे २७ उच्छ्वास होते हैं) कहा है--

सप्तविंशतिरुच्छ्वासाः ससारोन्मूलनक्षमे।
सन्ति पञ्चनमस्कारे नवधा चिन्तिते सति ॥

अर्थात् ससारका उन्मूलन करनेमे समर्थ पञ्चनमस्कार मंत्रका नौवार जाप करनेमे २७ उच्छ्वास होते है।

श्री अनगार धर्मामृतके आठवें अध्यायमे प्रत्येक प्रतिक्रमण सम्बन्धी कायोत्सर्गके उच्छ्वासोकी सख्या अलग अलग बताई है।

ये छहो आवश्यक और पाच परमेष्ठिनमस्कार, एक असही* और एक निसही, ये तेरह, साधुकी आवश्यक क्रियायें हैं। जैसा कि लिखा है—

---

* जिनालय वगैरहमें प्रवेश करते समय निसही और वहासे निकलते समय असही कहना साधुके लिये आवश्यक है।

आवश्यकानि पट् पञ्च परमेष्ठिनमस्क्रियाः ।
निसही चासही साधोः क्रियाः कृत्यास्त्रयोदश ॥१२०॥

(अनगार धर्म०)

उक्त छै आवश्यक केवल साधुके लिये ही नहीं थे, गृहस्थके लिये भी उसकी पदमर्यादाके अनुसार आवश्यक थे । जबसे इनके स्थानमें देवपूजा, गुरुपासना, स्वाध्याय, सयम, तप और दान, श्रावकके ये पट्कर्म निर्धारित किये गये तबसे प्राचीन पट्कर्म गृहस्थाचारमेंसे एकदम लुप्त ही होगये । फिर भी सामायिक, वन्दना, स्तव तो गृहस्थो में किसी न किसी रूपमें प्रचलित भी हैं, किन्तु प्रतिक्रमणका तो गृहस्थ नाम भी भूल गये । प० आशाधर जीने अपने सागारधर्मामृतके छठे अध्यायमें श्रावककी दिनचर्या वतलाते हुए कहा है—

इत्यास्थायोत्थितस्तल्पाच्छुचिरेकायनोऽर्हतः ।
निर्मायाष्टतयीमिष्टिं कृतिकर्म समाचरेत् ॥२॥

अर्थ—इस प्रकार प्रतिज्ञा करके श्रावक शय्यासे उठे और पवित्र होकर एकाग्रमनसे जिनेन्द्रदेवकी अष्ट द्रव्यसे पूजा करे । फिर कृतिकर्म करे ।

यह कृतिकर्म क्या वस्तु है, जो पूजाके वाद गृहस्थके लिए करना आवश्यक वतलाया है, उक्त श्लोकको पढ़कर यह उत्सुकता होना स्वाभाविक है । प० आशाधर जी ने टिप्पणमें एक श्लोकके द्वारा कृतिकर्मका स्वरूप इस प्रकार वतलाया है—

योग्यकालासनस्थानमुद्रावर्तशिरोनतिः ।
विनयेन यथाजातः कृतिकर्मामलं भजेत् ॥

योग्य कालमें योग्य आसनमें, योग्य स्थानमें सामायिकके योग्य मुद्रा धारण करके चारों दिशाओं में घूमकर तीन तीन आवर्तपूर्वक नमस्कार करे। तथा विनयपूर्वक मुनिके तुल्य परिग्रहका त्याग करके निर्मल कृतिकर्म करे। अर्थात् विधिपूर्वक सामायिकको कृतिकर्म कहते हैं। सामायिकके अन्तमें आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करना चाहिये। इस तरहसे कृतिकर्मसे तो छहों आवश्यक आ जाते हैं।

इस तरह मुनि और श्रावक सम्बन्धी क्रियाके साथ नमस्कार मन्त्र घनिष्ठरूपसे सम्बद्ध है।

जैन कथाएँ और नमस्कारमंत्र—

जैन पुराणों और कथाकोशों में नमस्कार मंत्रका माहात्म्य बतलाने वाली कथाएँ बहुतायतसे पाई जाती हैं। यदि उन सब कथाओंका संग्रह किया जाय तो एक बड़ा पुराण बन सकता है। यहाँ हम उनमेंसे दो कथाओंको संक्षेपसे देते हैं।

पं० आशाधर जी ने अपने सागार धर्मामृतमें णमोकार मंत्रका माहात्म्य दर्शाते हुए लिखा है।

एकोऽप्यर्हन्नमस्कारो विशेच्चेन् मरणे मनः।
सम्पाद्याभ्युदयं मुक्तिश्रियमुत्कयति द्रुतम्॥
स णमो अरहंताणमित्युच्चारणतत्परः।
गोपः सुदर्शनीभूय सुभगाख्यः शिवं गतः॥

अर्थात् मरण समयमें यदि अकेला एक 'अर्हन्त नमस्कार' ही मनमें बस जाये तो वह अभ्युदयको प्राप्त कराकर शीघ्र ही मुक्ति लक्ष्मीको उत्कंठित करता है। 'णमो अरहंताणं' इतना

उच्चारण करनेमें तत्पर सुभगनामका ग्वाला सुदर्शन सेठ होकर मुक्तिको प्राप्त हुआ। इसकी कथा इस प्रकार है—

सुदर्शन सेठकी कथा

चम्पापुरीके सेठके यहा एक सुभग नामका ग्वाला नौकर था। एक दिन वह जगलसे गौओंको लेकर घरको लौट रहा था। मार्गमें एक जैन मुनि ध्यान लगाकर बैठे थे। उस समय बड़ा शीत पड़ रहा था। नग्न मुनिको देखकर ग्वाला सोचने लगा-इस भीषण ठडमे इनकी रात कैसे बीतेगी। इन्हे ठडसे बचाने का कोई उपाय करना चाहिये। ऐसा विचार कर वह घर आया और जलानेके लिये लकडिया लेकर मुनिके पास पहुँचा। वहा उसने आग जलाकर रात भर मुनिको गर्मी पहुँचानेका प्रयत्न किया।

प्रातःकाल होने पर मुनिने उसे उपदेश दिया और कहा कि तू उठते बैठते चलते समय पहले 'णमो अरिहताणं' इस मत्रको पढ़ लिया कर। पश्चात् मुनि 'णमो अरिहताणं' कहकर आकाशमें उड़ गये। यह देखकर उस ग्वालेकी उस मन्त्रपर बड़ी श्रद्धा हो गई और वह हर क्रियासे पहले 'णमो अरिहताण' जपने लगा।

एक दिन वह ग्वाला गाय चराने गया, और एक जगलमें पडकर सो गया। उसकी गाएँ नदीके उसपार चली गईं। जब उसकी आख खुली तो वह पार जानेके लिये नदीमे कूदा। कूदते ही उसके पेटमें एक लकडी घुस गई और वह मरणासन्न हो गया। उसने तुरन्त 'णमो अरिहताण' पढा और मरकर अपने सेठका पुत्र हुआ। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। सुदर्शन बड़ा शील-

व्रती था। पटनासे उसने मुक्ति प्राप्त की। पुण्यास्रव कथाकोशमें इसकी अत्यन्त रोचक कथा पढने योग्य है।

धरणेन्द्र पद्मावती की कथा

भगवान पार्श्वनाथ जब कुमार थे तो एक दिन गगा नदीके किनारे घूमनेके लिये गये। वहा कुछ तापसी आग जलाकर तपस्या करते थे। पार्श्वनाथ घूमते घूमते उनके पास पहुँचे और अचानक ठिठककर रह गये। उनकी करुणापूर्ण दृष्टि आगमें जलती हुई एक लकडीपर ठहर गई जिसमें एक नागोंका जोडा था। उन्होंने तुरन्त उस लकडीको आगमे निकाला और लकडी चीर कर नाग नागनीको बचानेकी चेष्टा की। मगर आगने उन्हें अधमरा कर दिया था और उनके प्राण कण्ठगत थे। भगवानने तत्काल उनके कानमें णमोकार मत्र दिया। जिसके प्रभावसे वे दोनों मरकर नाग कुमारोंके अधिपति धरणेन्द्र और पद्मावती हुए और भगवान पार्श्वनाथकी दीनवत्सलता को जानकर उनके परमभक्त और सेवक हो गये।

उक्त घटनाके पश्चात् ही पार्श्वनाथ ने ससार को त्यागकर जिन दीक्षा ले ली। एक दिन वे अहिच्छेत्र (बरेली जिलेमें) के जगलमें ध्यानस्थ थे। उनके पूर्व जन्मका वैरी कमठ उधरसे कहीं जाता था। पार्श्वनाथ को देखते ही उसे अपने पूर्व जन्मका वैर याद आया और उसने उनपर घोर उपसर्ग किया। किन्तु पार्श्वनाथ अपने ध्यानसे विचलित नहीं हुए। इतनेमें ही धरणेन्द्र और पद्मावती अपने महान उपकारकपर विपत्ति जानकर उपस्थित हुए। और धरणेन्द्रने सर्पका रूप धारणकर ध्यानस्थ भगवानके ऊपर अपना विशाल फण फैला दिया। उपद्रवी देखते ही भाग गया और पार्श्वनाथ केवली होकर सम्मेद शिखरसे मुक्त हुये।

अनानुपूर्वी

अन्तमें हम उस 'अनानुपूर्वी[1] को देते हैं जिसकी पिछले पृष्ठमें चर्चा की गई है। इसमें २० मन्त्र हैं जिन्हें नम्बर के अनुसार क्रमसे पढ़ना चाहिये। इसमें णमोकारके पांचों पदोंको व्यतिक्रमसे पढ़ना होता है इससे इसके जप करनेमें मन स्थिर रहता है। इसके पढ़नेका क्रम इस प्रकार है—जहां १ का अंक हो वहां 'णमो अरिहंताणं' पढ़ना चाहिये। जहां २ का अंक हो वहां 'णमो सिद्धाणं' पढ़ना चाहिये, जहां ३ का अंक हो वहां 'णमो आयरियाणं' पढ़ना चाहिये। जहां ४ का अंक हो वहां 'णमो उवज्झायाणं' पढ़ना चाहिये। और जहां ५ का अंक हो वहां 'णमो लोए सव्वसाहूणं' पढ़ना चाहिये।

---

[1]—अमृतसर के स्व० लाला मुकुन्दीलाल जी जिनवाणीभक्त ने सन् १९२७ में आनापूर्वी का प्रकाशन करके वितरण किया था। उसीपर से यह आनापूर्वी यहां दी गई है। उन्होंने इसका नाम आनापूर्वी दिया था। असल में तो अनानुपूर्वी नाम होना चाहिये क्योंकि इसमें अक्रम से जप किया जाता है। ले०।

१

१	२	३	४	५
२	१	३	४	५
१	३	२	४	५
३	१	२	४	५
२	३	१	४	५
३	२	१	४	५

३

१	३	४	२	५
३	१	४	२	५
१	४	३	२	५
४	१	३	२	५
३	४	१	२	५
४	३	१	२	५

२

१	२	४	३	५
२	१	४	३	५
१	४	२	३	५
४	१	२	३	५
२	४	१	३	५
४	२	१	३	५

४

२	३	४	१	५
३	२	४	१	५
२	४	३	१	५
४	२	३	१	५
३	४	२	१	५
४	३	२	१	५

५

१	२	३	५	४
२	१	३	५	४
१	३	२	५	४
३	१	२	५	४
२	३	१	५	४
३	२	१	५	४

६

१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

७

१	३	५	२	४
३	१	५	२	४
१	५	३	२	४
५	१	३	२	४
३	५	१	२	४
५	३	१	२	४

८

२	३	५	१	४
३	२	५	१	४
२	५	३	१	४
५	२	३	१	४
३	५	२	१	४
५	३	२	१	४

९

१	२	४	५	३
२	१	४	५	३
१	४	२	५	३
४	१	२	५	३
२	४	१	५	३
४	२	१	५	३

११

१	४	५	२	३
४	१	५	२	३
१	५	४	२	३
५	१	४	२	३
४	५	१	२	३
५	४	१	२	३

१०

१	२	५	४	३
२	१	५	४	३
१	५	२	४	३
५	१	२	४	३
२	५	१	४	३
५	२	१	४	३

१२

२	४	५	१	३
४	२	५	१	३
२	५	४	१	३
५	२	४	१	३
४	५	२	१	३
५	४	२	१	३

१३

१	३	४	५	२
३	१	४	५	२
१	४	३	५	२
४	१	३	५	२
३	४	१	५	२
४	३	१	५	२

१५

१	४	५	३	२
४	१	५	३	२
१	५	४	३	२
५	१	४	३	२
४	५	१	३	२
५	४	१	३	२

१४

१	३	५	४	२
३	१	५	४	२
१	५	३	४	२
५	१	३	४	२
३	५	१	४	२
५	३	१	४	२

१६

३	४	५	१	२
४	३	५	१	२
३	५	४	१	२
५	३	४	१	२
४	५	३	१	२
५	४	३	१	२

[illegible]

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]		[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]		[illegible]

लेखक की अन्य रचनाएँ

जैनधर्म—जैनधर्मका इतिहास, सिद्धान्त, आचार, साहित्य, कला, पुरातत्त्व, पन्थ, पर्व, तीर्थक्षेत्र आदि का सरल भाषा में सुन्दर परिचय। भूमिका लेखक, उत्तर प्रदेशके मुख्य-मंत्री डाक्टर श्री सम्पूर्णानन्द। जैन धर्मके मुख्य-मुख्य सिद्धान्तोंके सुन्दर परिचयके लिये प्रस्तुत पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। जैनधर्म सम्बन्धी ऐसी पुस्तक अन्य किसी भाषा में नहीं है। मूल्य चार रुपया।

तत्त्वार्थ सूत्र—तत्त्वार्थ सूत्र की सरल संक्षिप्त व्याख्या, पाठकों तथा विद्यार्थियों के लिये बहुत ही उपयोगी है।

मूल्य अढ़ाई रुपया।

भगवान ऋषभदेव—जैनधर्मके प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव का सरल संक्षिप्त परिचय—श्री जिनसेनाचार्यके आधार पर संकलित।

मूल्य सवा रुपया।

स[illegible] के [illegible]न्य प्रकाशनोंके [illegible] पत्र मंगाकर देखें।

प्राप्तिस्थान

मैनेजर, भारतीय दि० जैनसंघ
चौरासी, मथुरा।